.... राधे अलबेली महारानी ....

राधे अलबेली महारानी इनकी शरणन चल प्राणी

राधा राधा नाम रट्यो कर, श्री राधा को ध्यान धरयो कर,
राधे सब गुण की हैं खानी, इनकी शरणन.....

श्री राधा के द्वार परयो रह, भूख प्यास सुख सों मन में सह,
राधे कृपा भरी कल्याणी, इनकी शरणन.....

राधा दासन की सेवा कर, राधा लीला कह्यो सुन्यो कर,
राधे दया करें ठकुरानी, इनकी शरणन.....

श्री राधा को है बरसानो, श्री राधा को है गह्वर वन,
राधा कृपा की दानी, इनकी शरणन.....

❋❋❋

अनुक्रमणिका

१.	विश्वास और शरणागति	३
२.	धाम–महिमा	७
३.	नाम की अचिन्त्य शक्ति	६
४.	रसीली ब्रज यात्रा	१०
५.	भक्त सालबेग	१३
६.	आदर्श ब्रजवासी	१४
७.	भगवान के कपट में विशुद्ध प्रेम	१६
८.	आत्मसमर्पण	१६
९.	श्रीहनुमान प्रसाद पोद्दार	२०
१०.	गौ महिमा	२२
११.	भगवत्कृपा का वास्तविक स्वरूप	२४
१२.	राधारानी ब्रजयात्रा का इतिहास	२५
१३.	'सर्वनाम' से राधाचरित्र	२७
१४.	असङ्गता ही अनन्यता	३०
१५.	मान मंदिर की गतिविधियाँ	३१

संरक्षक –

श्री राधा मान बिहारी लाल

श्री मान मंदिर सेवा संस्थान अनेकानेक सत्कार्यों का संचालन प्रभु की प्रियता व लोक कल्याण की भावना से नि:शुल्क कर रहा है, उसी तरह 'मान मंदिर' पत्रिका का भी कोई शुल्क नहीं रखा गया है।

श्रद्धानुसार भावार्पित तुलसीदल भी ग्राह्य है अर्थात् स्वेच्छानुदान स्वीकृत है।

प्रकाशक –

श्रीराधाकान्त शास्त्री

श्री मान मन्दिर सेवा संस्थान

गह्वर वन, बरसाना, मथुरा (उ. प्र.)

Website : www.maanmandir.org

E-mail : ms@maanmandir.org

Tel. : 9927338666, 9837679558, 9927194000

विश्वास और शरणागति

(श्री बाबा महाराज के 'नाम महिमा' सत्संग से संग्रहीत)

भगवन्नाम में अनन्त शक्ति है। ऐसे अनेक उदाहरण हैं- मान मंदिर पर आकर के भगवन्नाम-प्रताप से बहुत से लोगों की भूत-प्रेत आदि की बाधा भी दूर हो गई। ५८ साल तक ब्रज के पर्वतों की सुरक्षा हेतु लड़ाई चलती रही परन्तु किसी को कुछ भी नहीं हुआ। केवल विश्वास ही एकमात्र साधन है। विपरीत परिस्थितियों में जीव घबड़ा जाता है और घबड़ा के अपना विश्वास खो देता है। इसका कारण यह है कि संसार विश्वास की बात नहीं कहता, अविश्वास की बात कहता रहता है। इसलिए जीव घबड़ा जाता है, अतः आस्था चाहिए। भगवान् की कृपा से ही आस्था आती है। श्री राधा रस मंदिर, गहवर वन में साधु-वैष्णव सेविका, दिव्य ब्रजवासिनी यमुनाजी के घर पर चोर आते थे और उनकी ५ संतानों में घर पर कोई नहीं रहता था परन्तु उनका आश्रय अनन्य था। उस विश्वास के फलस्वरूप उनके छोटे पुत्र की संतानें कथा-व्यास हैं। सभी भगवद्परायण हैं और भगवद्-भक्ति की ओर चल रहे हैं। यह सब विश्वास का फल है। मनुष्य अनेक साधन करता है- कोई जप, कोई तप, कोई कुछ परन्तु विश्वास के बिना कोई फल नहीं।

सबसे बड़ा साधन प्रह्लाद जी ने कहा है-

भवतामपि भूयान्मे यदि श्रद्दधते वचः।
वैशारदी धीः श्रद्धातः स्त्रीबालानां च मे यथा॥

(भा. ७/७/१७)

हे असुर बालकों! तुम भी मेरी तरह बन सकते हो, तुम्हारे लिए भी नृसिंह भगवान् आयेंगे। एक मूर्ख स्त्री, एक मूर्ख बच्चा भी मेरी तरह बन सकता है। वह कैसे? एक ही साधन है और यह नहीं तो सब बेकार हैं। माला, जप, तप, व्रतादि कठिन साधनों की जरूरत नहीं है। **(यदि श्रद्दधते वचः)** 'श्रद्धा' माने विश्वास, श्रद्धा की परिभाषा वेदांत में बताई गयी है-

'गुरू वेदांतवाक्येषु विश्वासः इति श्रद्धा।'

प्रह्लाद जी ने कहा है कि यदि श्रद्धा है तो ठीक है, नहीं तो कोई साधन फल नहीं देगा। **'वैशारदी धीः श्रद्धातः'** सबसे बड़ी बुद्धि **(वैशारदी धीः)** श्रद्धा से मिलती है। स्त्री जो कि पाप योनि है, छोटा-सा बच्चा ही क्यों न हो, प्रह्लाद जी कहते हैं वह भी मेरी तरह हो जाएगा। उम्र नहीं देखनी चाहिए। क्योंकि छोटा बच्चा ज्यादा बड़ा भक्त होता है, उसमें संशय नहीं होता है। काम-वासना बचपन में नहीं रहती। कोई बच्चा भजन करता है तो उसका विशेष महत्व होता है-

कौमार आचरेत्प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह।
दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम्॥

(भा. ७/६/१)

'कौमार आचरेत्प्राज्ञो' कुमार अवस्था से ही भक्ति करनी चाहिए। कुमार अवस्था में काम, क्रोध, आदि छल-कपट नहीं होते। इसलिए भक्त बालक का सम्मान करना चाहिए। बहुत कृपा होती है तब भगवान् की भक्ति मिलती है। कोई योगभ्रष्ट साधक होता है तब कुमारावस्था से भक्ति मिलती है। गीताजी में भगवान् ने कहा है-

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते॥
अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम्॥

(गीता ६/४१,४२)

'शुचीनां श्रीमतां गेहे' दो प्रकार के योगभ्रष्ट होते हैं जिनका पवित्र वंश में जन्म होता है। अर्जुन ने पूछा कि साधक योगमार्ग में गिरा तो क्या होगा? भगवान् ने कहा कि उसका नुकसान नहीं होगा, उसका जन्म होगा ऐसे (शुचि) पवित्र वंश में कि बचपन से ही भक्ति मिलेगी, दूसरा जो उससे भी बड़ा है उसका योगियों के घर में जन्म हो जायेगा। ये समझ लो कि भगवत्प्राप्ति के पास ही है। **'अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्'।** ऐसा जन्म दुर्लभतर जन्म है।

निमित्त कुछ भी बन जाता है। कोई कारण बन गया परन्तु भक्ति कभी नष्ट नहीं होती है। संसार में सबसे बड़ा धनी वही है जिसके पास भक्ति रूपी धन है, चाहे वो भिक्षा माँगकर खा रहा है अथवा गरीब है।

सकलभुवनमध्ये निर्धनास्तेऽपि धन्या,
निवसति हृदि येषां श्रीहरेर्भक्तिरेका।
हरिरपि निजलोकं सर्वथातो विहाय,
प्रविशति हृदि तेषां भक्तिसूत्रोपनद्धः॥

(भा.मा. ३/७३)

सारे संसार में वो सबसे बड़ा धनी है और धन्य भी वो है चाहे कितना भी गरीब है चूँकि भक्ति ऐसा धन है जो कभी नष्ट नहीं होगा। जिसके हृदय में भगवान् की भक्ति है, उसके हृदय में भक्ति की डोर से बंधकर के भगवान् वैकुण्ठ छोड़ के भी आ जायेंगे। जैसे जेल में कैदी रहता है वैसे ही भगवान् को उसके बन्धन में रहना पड़ेगा। उससे बड़ा धनी कौन हो सकता है जिसके हृदय में भगवान् बंधे हैं। इस विश्वास से मनुष्य को भजन करना चाहिए। महाभारत युद्ध से पहले अर्जुन और दुर्योधन दोनों भगवान् कृष्ण के पास सहायता के लिए गये। अर्जुन ने सेना को नहीं लिया, मात्र कृष्ण को ही लिया। दुर्योधन होशियार था, उसने सोचा कि अकेले कृष्ण को लेकर क्या करूँगा जो न लड़ेंगे, न भिड़ेंगे, हथियार ही नहीं उठायेंगे। वह चतुर बनता था अतः उसने सेना को लिया। अर्जुन ने चतुराई नहीं की, चाहे हार (पराजय) हो जाय अथवा कुछ भी हो जाय, मुझे सेना नहीं, केवल कृष्ण ही चाहिए।

बहुत बड़ा फैसला किया। सामने लड़ाई हो रही है, दिन-रात लड़ना पड़ेगा फिर भी उसने सेना नहीं लिया, यह कितनी बड़ी बात है, इसको विश्वास कहते हैं। मनुष्य भगवान् के लिए जितना त्याग करता है उतना ही भगवान् उसके ऋणी हो जाते हैं। हम साधु होकर भी भोगों का त्याग नहीं कर पाते हैं, लड्डू-पेड़ा के दास बने रहते हैं। अम्बरीष जी के प्रसंग में भगवान् ने स्वयं कहा है- मैं अपने आपको छोड़ दूँगा, लक्ष्मी जी को छोड़ दूँगा, अपना शरीर छोड़ दूँगा लेकिन जिसने हमारे लिए सब कुछ छोड़ा है उसको नहीं छोड़ सकता हूँ।

ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम्।
हित्वा मां शरणं यातः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे॥

(भा. ९/४/६५)

यह भगवान् की प्रतिज्ञा है। इसे प्रतिज्ञा वाक्य कहते हैं। दया के कारण भगवान् ने प्रतिज्ञा किया है। भक्ति इतनी बड़ी शक्ति है, इसलिए हमें भगवान् के लिए छोड़ना सीखना चाहिए। हम लोग पैसा पकड़ते हैं, अच्छे वस्त्र पकड़ते हैं, सुन्दर स्त्री या अच्छा रूप पकड़ते हैं। यह सब नहीं करना चाहिए। भगवान् के लिए छोड़ना चाहिए तब वह ऋणी हो जाते हैं। वहाँ छल नहीं चलता है। सबसे ज्यादा कठिन होता है स्त्री आकर्षण को छोड़ना। साधु होकर के भी लोग स्त्री-आकर्षण में पड़ जाते हैं। मकान, सम्पत्ति, खेत, महल आदि भी बाँधते हैं। मनुष्य को ये चीजें भगवान् से दूर कर देती हैं। बड़ा आश्रम अथवा बेटा-बेटी की आसक्तियां भगवान् से दूर कर देती हैं। माँ-बाप तथा अपने प्राणों का भी मोह छोड़ना पड़ता है तब भगवान् ऋणी हो जाते हैं। आज नहीं तो कल मृत्यु अवश्य होगी, अमर तो कोई है नहीं, ऐसा भाव रखना चाहिए कि प्राण भगवान् को भेंट हो जाएँ उससे ज्यादा और और क्या है। जब प्राण को छोड़ सकते हो तो अपने-आप माया छूट जाएगी। पैसा, सारा संसार और परलोक आदि की सब आसक्तियाँ छोड़ दो, उसको छोड़कर भगवान् की शरण में जाओ, चमत्कार जरूर होगा। भगवान् कहते हैं कि ऐसे भक्तों को मैं नहीं छोड़ सकता हूँ।

नाहमात्मानमाशासे भद्भक्तैः साधुभिर्विना।
श्रियं चात्यन्तिकीं ब्रह्मन् येषां गतिरहं परा॥

(भा. ९/४/६४)

भगवान् कहते हैं कि ऐसे भक्तों के बिना मैं भी नहीं जी सकता हूँ। जो अविनाशी है वह भगवान् ऐसा कह रहा है। भक्त को ऐसा होना चाहिए। जो भक्तापराध करता है वो भगवान् की शरण में नहीं है। जैसे एक बाप के चार बेटे आपस में लड़ते हैं तो पितृ भक्त नहीं है। राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न चार भाई थे, वहाँ भी लड़ाई थी परन्तु किस बात की, राम कहते थे- भरत तुम गद्दी पर बैठो। भरत कहते थे- मैं नहीं बैठ सकता। गुरु, माता-पिता आदि सबने गद्दी पर बैठने को कहा तो भरत बोले- हमें राजा बनाओगे तो त्रिलोकी पाताल में चली जाएगी। भरत गद्दी पर नहीं बैठे तो नहीं बैठे। इसलिए वहाँ इस बात की लड़ाई थी। अगर भरत गद्दी पर बैठ जाते तो दशरथ के वचन का पालन हो जाता परन्तु उन्होंने कहा कि माता-पिता और गुरु की आज्ञा जाय तो जाय। इसको कहते हैं त्याग, इसको कहते हैं भक्ति। भरत गद्दी पर नहीं बैठे। दूसरी ओर एक गुरु के चार शिष्य हैं और वे आपस में लड़ रहे हैं तो कोई भी गुरु - भक्त नहीं है। रामायण में भगवान् की प्रतिज्ञा है-

सुनु सुरेस उपदेसु हमारा। रामहि सेवक परम पिआरा॥

(रा.मा.अयो. २१९)

अपने अपराध पर भगवान् कभी नाराज नहीं होते हैं परन्तु अगर भक्तापराध करते हो तो भगवान् की कृपा नहीं मिल सकती है।

सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ।
निज अपराध रिसाहिं न काऊ॥
जो अपराधु भगत कर करई।
राम रोष पावक सो जरई॥ (रा.मा.अयो. २१८)

भक्त कभी भक्त से नहीं लड़ता है, यदि लड़ता है तो वह भक्त नहीं है।

तुलसी जाके मुख ते धोखेहु निकसत राम।
वाके पग की पगतरी मोरे तन को चाम॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि धोखे से भी जिसके मुख से भगवान् का नाम निकला है तो मेरे शरीर का चमड़ा काटकर उसके पाँव की जूती बना दो। इसको भक्ति कहते हैं। भगवान् की सेवा करो लेकिन भगवान् खुश नहीं होंगे परन्तु भक्त की सेवा से वह प्रसन्न हो जाते हैं किन्तु हर आदमी भजन तो खूब करता है लेकिन भक्तापराध के कारण सब शून्य हो जाता है, भजन चला जाता है। इसीलिये सूरदास जी ने कहा है-

श्री पति दुःखित भक्त अपराधे।
मम भक्तन सों बैर करत है,
सकल सिद्धि मोहि सो साधे॥

भक्त से तो बैर करता है और सोचता है कि भगवान् मुझे सभी सिद्धियाँ दे दें तो ऐसा नहीं है।

संतन द्रोह द्रोहिता करके, आरत सहित मोहि आराधे।

भक्त से द्रोह करता है और भगवान् के सामने आंसू बहाकर प्रार्थना करता है तो वो आँसू नहीं जहर हो गया।

सुनहु सकल बैकुण्ठ निवासी,
सत्य कहौं मानहु जनि खेद।
तिन्ह पर कृपा करूं मैं केहि बिधि,
पाँय को पूज कंठ को छेद॥

भगवान् कहते हैं कि हमारे पाँव की तो पूजा कर रहा है लेकिन मेरा गला काट रहा है। भक्त भगवान् का गला है। तुम रोज उनका चरणामृत लेते हो और भक्त से द्रोह करते हो तो भगवान् का पाँव पूजने से कुछ नहीं होगा।

जन सो बैर प्रेम मो सो कर, मेरो नाम निरन्तर लैहै।
सूरदास भगवंत वदत हैं, मोहि भजे पै यमपुर जैहै॥

तुलसीदास जी कहते हैं-

'प्रथम भगति संतन्ह कर संगा।'

पहले भक्त का संग करना पड़ता है, भक्त की सेवा करनी पड़ती है, भगवान् की शरणागति के लिए समस्त आसक्तियों को छोड़ना पड़ता है। भगवान् ने विभीषण को शरणागति की शिक्षा दी- सारे संसार की हत्या करके भगवान् की शरण में आओ। यदि शरणागति सच्ची है तो वह पाप नष्ट हो जाएगा।

मसकहि करइ बिरंचि प्रभु, अजहि मसक ते हीन।
(रा.मा.उ. १२२)

प्रभु मच्छर को ब्रह्मा बना सकता है और मच्छर को ब्रह्मा। सारे संसार की हत्या करके भी भगवान् के पास जाओ, यदि शरणागति सच्ची है तो भगवान् से भी बड़े बन जाओगे।

जौ नर होइ चराचर द्रोही।
आवै सभय सरन तकि मोही॥
(रा.मा.सु. ४८)

एक-दो नहीं सारे संसार से द्रोह किया है, मारा है, इतना बड़ा पापी है लेकिन भगवान् कहते हैं फिर भी मेरी शरण में आये, कैसे?

तजि मद मोह कपट छल नाना।
करउँ सद्य तेहि साधु समाना॥

शरणागति ऐसी नहीं होनी चाहिए कि वासनाओं का कपट लेकर आये। भगवान् कहते हैं कि यदि सच्ची शरणागति है तो मैं ब्रह्मा आदि से भी बड़ा बना दूँगा। भगवान् कहते हैं कि मेरी शरण में आने के लिए पहले सब प्रकार की ममता छोड़ो, सर्वप्रथम माँ-बाप की ममता छोड़ो। साधु बनके भी तन, धन आदि की आसक्ति करने का लाइसेंस नहीं मिला है।

जननी जनक बन्धु सुत दारा।
तनु धनु भवन सुहृद परिवारा॥
सब कै ममता ताग बटोरी।
मम पद मनहि बाँध बरि डोरी॥
(रा.मा.सु. ४८)

अगर ऐसी शरणागति करते हो तो पाप न जाने कहाँ भस्म हो जायेंगे। इसलिए भगवान् ने गीता में कहा कि ममता को छोड़ोगे तो ब्राह्मी स्थिति में पहुँच जाओगे।

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति॥
(गीता २/७१)

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
(गीता २/७२)

ममता खत्म हो गई और अहं खत्म हो गया तो ब्राह्मी स्थिति हो गई। तुम भगवान् बन गये। लेकिन हमें धन आदि गिरा देते हैं तो ब्राह्मी स्थिति कैसे होगी, ये अपने साथ छल है, कपट है। इस प्रकार हम भगवान् से विमुख हो जाते हैं।

एक मुल्लाजी थे, जब उनके रोजा का समय आया तो वह कहते थे कि मैं दिन में न कुछ खाता हूँ, न पीता हूँ। वह कहते थे कि मैं ऐसी चोरी करता हूँ कि खुदा भी नहीं जानता। जब वह स्नान करने नदी में जाते थे तो मुँह में पानी भर लेते थे और बाकी दिन भर कुछ नहीं खाते थे, इस प्रकार २०-२५ दिन बीत गये। एक दिन नदी में डुबकी लगाते समय जल के भीतर वह शीघ्रता में पानी पी रहे थे, इतने में उनके मुख के भीतर मछली चली गई तब तो वह आ.....आ.....आ..... करके चिल्लाने लगे। सब लोग उनके पास आये, मुल्लाजी का जीना मुश्किल हो गया, उनके पेट में से मछली निकाली गई। उनकी यह हरकत देखकर सभी लोग कहने लगे- अरे मुल्लाजी, तुम तो ऐसी चोरी करते थे कि खुदा-मियाँ भी न जाने। वैसे ही धन जिसके पास आता है तो वह हेरा-फेरी करता है। लक्ष्मी का वाहन उल्लू है तो वह आदमी को उल्लू बना देती है। मनुष्य के पास पैसा आया तो पैसे के पहुँचते ही या उसको छूते ही १५ दोष जरूर आ जाते हैं।

स्तेयं हिंसानृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयो मदः।
भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च॥

(भा. ११/२३/१८)

अगर साधक का भाव शुद्ध है तो वह शुद्ध हो जाएगा नहीं तो सात्त्विक भोजन भी दूषित हो जाएगा।

तेजस्वी तपसा दीप्तो दुर्धर्षोदरभाजनः।
सर्वभक्षोऽपि युक्तात्मा नादत्ते मलमग्निवत्॥

(भा. ११/७/४५)

हत्यारे का अन्न खा लोगे, उसका पैसा लोगे तो भी तुमको दोष नहीं लगेगा, अमर तुम संग्रह नहीं करते हो, धन को अपना नहीं मानते हो, उसे मात्र भगवद्कार्य में लगा देते हो।

◗◗◗

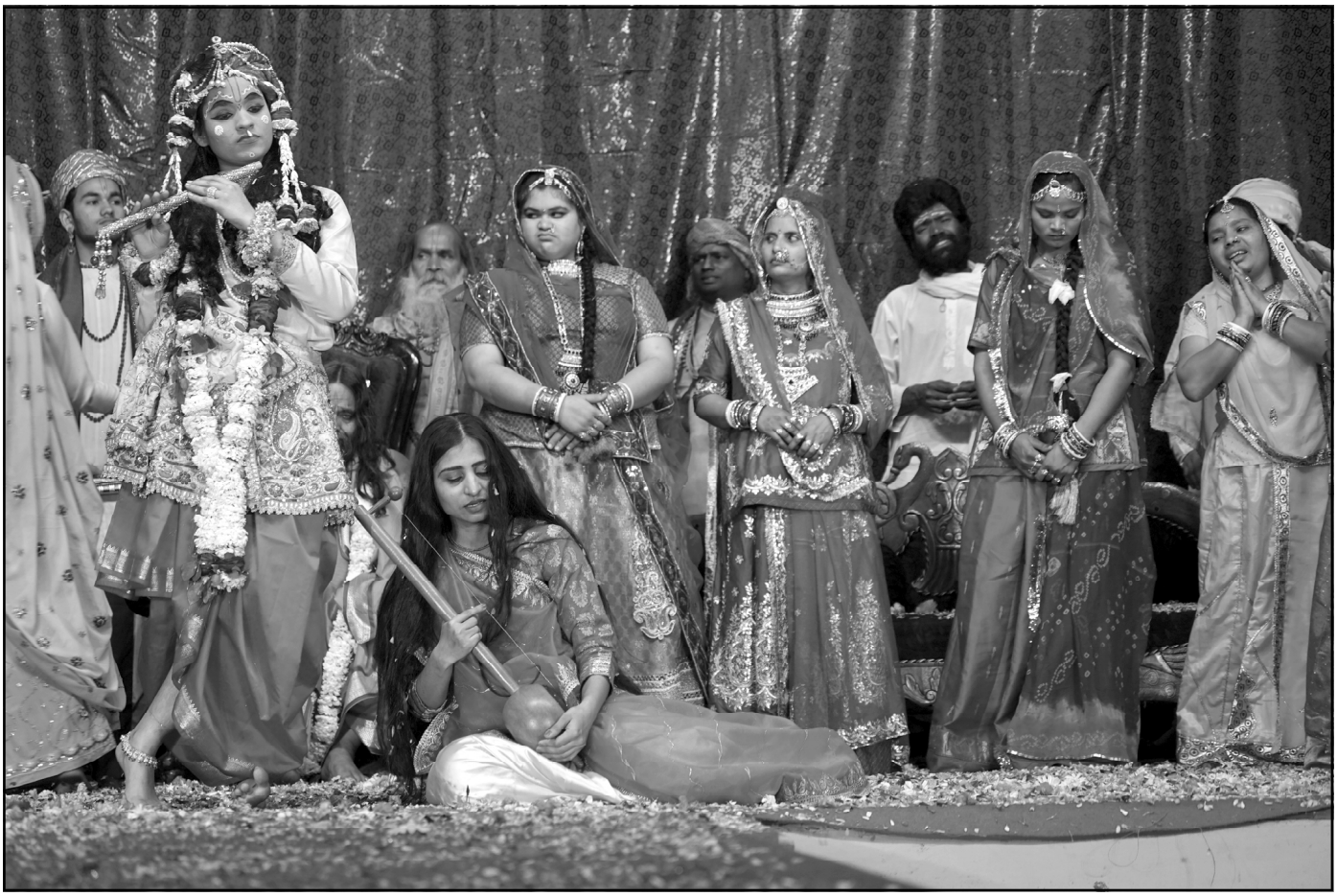

मेरे तो गिरिधर गोपाल, दूसरो न कोई।

धाम-महिमा

(श्री बाबा महाराज के श्रीमद्राधासुधानिधि उपदेशामृत से संग्रहीत)

निर्माय चारुमुकुटं नवचन्द्रकेण
गुञ्जाभिरारचितहारमुपाहरन्ती।
वृन्दाटवी नवनिकुञ्जगृहाधिदेव्याः
श्रीराधिके तव कदा भवतास्मि दासी॥

(रा.सु.नि.-३०)

सखी भाव भावित ग्रन्थकार की भावना है कि जो श्री राधा वृंदावन की अधिदेवी हैं, उनके दास्य की आशा में गुंजामाला तथा नवीन चन्द्रिका से मुकुट का निर्माण कर कब मैं उन्हें समर्पित करुँगी?

इससे पहले ग्रन्थकार ने धामवास हेतु एक विचित्र व अति अद्भुत त्याग का भी निम्नलिखित श्लोक में वर्णन किया है।

वृन्दानि सर्वमहतामपहाय दूराद्
वृन्दाटवीमनुसर प्रणयेन चेतः।
सत्तारणीकृतसुभाव सुधारसौघं
राधाभिधानमिह दिव्यनिधानमस्ति॥

(रा.सु.नि.-८)

यह धामनिष्ठा का एक अनोखा श्लोक है, जिसमें समस्त महत् वृन्दों को छोड़ने की बात कही गयी है। संसार छूटना तो छोटी बात है। यहाँ पर छोड़ने की बात क्यों कही गयी है? यदि धर्म त्याग अपनी वासना के लिए, कामाचारिता के लिए होता है तो वह एक जघन्य पाप है किन्तु निष्ठा के कारण यदि कोई वस्तु छोड़ी जाती है तो वह गौरव की बात है तथा यह त्याग निष्ठा का संवर्धन करता है, निष्ठा को बलवान बनाता है और फिर मनुष्य या साधक उस स्थिति पर पहुँचता है कि उस निष्ठा विशेष के बल पर समस्त विधि-निषेध का अतिक्रमण कर देता है तथा ऐसे साध्य की प्राप्ति करता है, जिसको साधारण पुरुष प्राप्त नहीं कर सकते। देवर्षि नारद जी ने तो यहाँ तक कहा है कि धर्म त्याग आवश्यक है।

लोकहानौ चिन्ता न कार्या निवेदितात्मलोकवेदत्वात्

(नारद भक्ति सूत्र-६१)

आत्मलोक, वेद आदि सर्वस्व का समर्पण करने के पश्चात् समस्त विधि-निषेधों से भक्त ऊपर चला जाता है जैसे गोपीजन थीं! उन्होने स्पष्टतया आर्यमार्ग व वेदमार्ग का परित्याग किया किन्तु वे सम्पूर्ण जगत में पूज्य हुई क्योंकि उनका लक्ष्य स्वसुख नहीं था, एकमात्र कृष्णसेवा, अपने प्रियतम श्यामसुंदर का सुख ही उनका उद्देश्य था। इसलिए इन ब्रजदेवियों को समझना कठिन है। यूँ तो द्वारका में श्रीकृष्ण की रानियाँ भी थीं, मथुरा में कुब्जा आदि थीं किन्तु वे गोपियों को नहीं पा सकीं। इसीलिए सूरदास जी ने पद लिखा

''**गोपी प्रेम की ध्वजा**'' ब्रजगोपिकाओं को उन्होंने ध्वजा बताया है क्योंकि ध्वजा सबसे ऊपर रहती है।

नारदजी ने जब भक्तिसूत्र बनाया तो उन्होंने विचार किया कि अपने इस ग्रन्थ में मूर्धन्य भक्त की श्रेणी में किसको रखें? समस्त ब्रह्माण्ड भर के भक्तों की महिमा को विचारकर अन्त में उन्होंने लिखा- ''**यथा ब्रजगोपिकानाम्**''

ब्रजाङ्गनाओं का ही सर्वोत्तम भक्त के रूप में देवर्षि ने उदाहरण दिया क्योंकि उनकी जो निष्ठा थी, वह समस्त वेदधर्मों का अतिक्रमण कर गई, लौकिक धर्म में उन्होंने माता-पिता, पति- पुत्र आदि समस्त सम्बन्धों की आसक्ति का त्याग कर दिया। जब श्रीकृष्ण ने गोपियों को वैदिक धर्म की शिक्षा देते हुए उन्हें लौट जाने के लिए कहा तो उन्होंने कहा-

कुर्वन्ति हि त्वयि रतिं कुशलाः स्व आत्मन्
नित्यप्रिये पतिसुतादिभिरार्तिदैः किम्।
तन्नः प्रसीद परमेश्वर मा स्म छिन्द्या
आशां भृतां त्वयि चिरादरविन्दनेत्र॥

(भा.१०/२९/३३)

हे कृष्ण! जो कुशल स्त्रियाँ हैं, वे एकमात्र तुमसे रति करती हैं।

अब पूछा जाये कि कृष्ण में रति क्यों करती हैं, रति तो उन्हें अपने पतियों में करनी चाहिए। वेद में भी कहा गया है कि स्त्री का परम कर्त्तव्य पातिव्रत धर्म का पालन करना है। लेकिन गोपियों का कहना है कि पति आत्मा नहीं हो सकता। संसार में स्त्री कितनी भी पतिव्रता है, पातिव्रत धर्म के पालन से पति के द्वारा उच्चलोक की प्राप्ति होतीहै परन्तु आत्मा तो एक ही है। पति परब्रह्म, परमात्मा व आत्मा नहीं हो सकता। इसलिए भागवत धर्म तो पातिव्रत धर्म आदि सब धर्मों से ऊपर है। गोपियों ने श्रीकृष्ण से कहा- तुम स्वआत्मन् अर्थात् स्वआत्मा हो, नित्यप्रिय हो, तुम्हारा प्रेम अविनाशी है, नित्य है। पति, सुत आदि के द्वारा अन्त में आर्ति (कष्ट) ही मिलती है। पातिव्रतधर्म चाहे कितना भी ऊँचा हो, उसके प्रभाव से सती स्त्री ऊर्ध्वलोकों को जाती है, देवलोक सहित समस्त ऊर्ध्वलोक कल्पपर्यन्त तक ही अस्तित्व में रहते हैं किन्तु भागवतधर्म की सीमा या अस्तित्व अनंतकाल तक है। इसलिए भागवतधर्म के आगे पातिव्रत धर्म तुच्छ है। स्वयं महादेव जी ने भी प्रचेतागणों से कहा था-

स्वधर्मनिष्ठः शतजन्मभिः पुमान्,
विरिञ्चतामेति ततः परं हि माम्।
अव्याकृतं भागवतोऽथ वैष्णवं,
पदं यथाहं विबुधाः कलात्यये॥

(भा. ४/२४/२९)

ब्रह्मा और मुझ शिवादि को जब तक अधिकार है तब तक हम लोग इस ब्रह्माण्ड का शासन करेंगे, फिर अरबों वर्षों पश्चात् भगवान् के धाम में प्रवेश करेंगे लेकिन भगवान् का भक्त तो सीधे ही वहाँ पहुँच जाता है। इसलिए ब्रह्मपद से भी बड़ा है वैष्णवपद। अतएव भागवत धर्म सर्वोच्च है, इसीलिए गोपियाँ इस बात को कहती हैं कि पति ईश्वर नहीं हो सकता। सर्वाराध्य तो भगवान् हैं, संसारी पति नहीं हो सकता। फिर पातिव्रत की उपासना जो स्त्री करती है, वह सकाम धर्म है। उच्चलोकों की आकांक्षा से कहीं ऐसा न हो कि धर्मभ्रष्टता आ जाये और हम नारकीय बन जायें। इसमें ये भय बना रहता है। कहीं कोई त्रुटि न हो जाये, यह भय जिस प्रेम में नहीं है, ऐसा शुद्ध प्रेम ब्रजगोपियों का था। उन्होंने कहा-

पतिसुतादिभिरार्तिदैः किम्।

जितनी भी पतिव्रता स्त्रियाँ हैं, उनको परिणाम में आर्ति की ही प्राप्ति होती है, शाश्वत् सुख की प्राप्ति नहीं होती है। पतिव्रता अपने धर्म की सिद्धि के बाद अपने पति के साथ स्वर्ग में आनंद भोगती है परन्तु उसे परमपति की प्राप्ति नहीं होती है। इसकी एक सीमा है। परमपति तो विशुद्धप्रेम से ही मिलता है, इसीलिए तो समस्त गोपियों ने पातिव्रत धर्म छोड़ दिया था, क्यों छोड़ दिया था, क्योंकि वह एक धर्म था जबकि शुद्ध प्रेम के लिए सर्वधर्मपरित्याग आवश्यक है। भगवान् ने कहा है-

आज्ञायैवं गुणान् दोषान् मयाऽऽदिष्टानपि स्वकान्।
धर्मान् सन्त्यज्य यः सर्वान् मां भजेत स सत्तमः॥

(भा. ११/११/३२)

सभी धर्मों का त्याग कर दिया तो वो सत्तम (सर्वश्रेष्ठ) है, उसको लोकादि की अपेक्षा नहीं है जैसे पातिव्रत में लोकादि की अपेक्षा होती है। (क्रमशः)

नाम की अचिन्त्य शक्ति

(ब्रजबालिका साध्वी श्री मुरलिका जी शर्मा, मान मंदिर)

''नम'' धातु का अर्थ है- झुकना।

''नमयति इति नाम''- ''नाम'' शब्द का अर्थ है- झुकाने वाला। नाम, नामी को नामग्रहणकारी की ओर एवं नामग्रहणकारी को अभिमान रूप पर्वत से दैन्यरूप महानिधि की ओर झुका देता है। वस्तुत: नाम-नामी अभिन्न हैं।

श्री मन्महाप्रभु जी के वचन-

कृष्णनाम, कृष्णगुण, कृष्णलीलावृन्द।
कृष्णेन स्वरूपसम सब चिदानंद॥

''कृष्णनाम, कृष्णगुण एवं कृष्णलीलायें, ये समस्त श्री कृष्ण के स्वरूप की भांति चिदानंदमय हैं।''

जिस प्रकार सामान्य दारु, पाषाणादि द्वारा निर्मित भगवद्-विग्रह, भगवत्-अधिष्ठित होने पर चिन्मय हो जाते हैं, प्राकृत अन्न-जल भी भगवदार्पित होने से दिव्य प्रसाद हो जाते हैं, ठीक उसी प्रकार प्राकृत जिह्वा द्वारा जो नाम उच्चारित होता है, वह भी चिन्मय ही होता है। जिह्वा का प्राकृतत्व नाम के अचिंत्यत्त्व को ढक नहीं सकता है वरं जिह्वा द्वारा उच्चारित नाम यदि प्राकृत शब्द ही रहता तो क्या शुक को रटाने से जीवन्ती वेश्या का कल्याण हो सकता था अथवा क्या पुत्र के ब्याज से नाम लेने पर अजामिल का कल्याण हो सकता था?

नाम संकीर्तन क्या?

''संकीर्तन बहुर्मिलित्वा तद् गानसुखं श्रीकृष्णगानम्''

(श्रीजीव गोस्वामी)

बहुजनों द्वारा एक साथ उच्चस्वर से श्रीकृष्ण के नाम, रूप, गुण, लीलादि के गान (कीर्तन) को नाम-संकीर्तन कहते हैं। ध्यान रहे कि यहाँ बहुत जनों के मिलने पर ही नाम-संकीर्तन की आज्ञा नहीं है, एकाकी रहने पर भी नाम-संकीर्तन के लिए कहा है। वस्तुत: प्रधानता बहुत जनों के मिलने की नहीं वरं नाम संकीर्तन की है। अत: श्रीमद्भागवत जी का वचन है-

साङ्केत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदु:॥

(भा. ६/२/१४)

अथवा-

पतित: स्खलितो भग्न: सन्दष्टस्तप्त आहत:।
हरिरित्यवशेनाह पुमान्नार्हति यातनाम्॥

(भा. ६/२/१५)

खाते-पीते, उठते-बैठते, सोते-जागते, गिरते-फिसलते, श्वांस-प्रश्वांस में अर्थात् भगवन्नाम- संकीर्तन सदा-सर्वदा ही परम कर्त्तव्य है।

बहुत जनों के मिलने पर ही कीर्तन बनेगा, ऐसा नहीं है, कारण कि उपर्युक्त समस्त अवस्थाओं में बहुत जनों के द्वारा मिलकर संकीर्तन करना असम्भव है। अत: नाम संकीर्तन का अभिप्राय उच्चस्वर से नामोच्चारण से ही है, चाहे वह सामूहिक रूप से किया जाये अथवा एकाकी होने पर किया जाये।

जप से संकीर्तन श्रेष्ठ-

नाम जप ३ प्रकार से होता है- १. मानसिक जप, २. उपांशु जप, ३. वाचिक जप

मानसिक जप मन से होने वाला जप है, जिसमें बाह्य क्रिया नहीं है, उपांशु जप में नाम लेते हुए ओष्ठों का व्यवहार होता है, नाम का धीरे-धीरे उच्चारण होता है, जो स्वयं को ही सुनाई देता है और वाचिक से अभिप्राय है- उच्चस्वर से होने वाला नाम-संकीर्तन।

श्री हरिदास ठाकुर प्रतिदिन ३ लाख नाम उच्चस्वर से कीर्तन करते थे, स्वयं श्री मन् चैतन्य महाप्रभु भी सदा उच्चस्वर में ही तारक ब्रह्म का नाम संकीर्तन करते थे।

नाम-संकीर्तन एक इन्द्रिय प्रधान साधना है, जिसमें कान व मुख दोनों को ही अन्य शब्द के श्रवण, ग्रहण का अवकाश प्राप्त नहीं होता है, जिससे चित्त विक्षिप्त नहीं होता है एवं शनै:-शनै: स्थिरता को प्राप्त कर लेता है।

नाम कैसे बनता है संकीर्तन?

सर्वप्रथम वाणी मूलाधार चक्र (गुदा) से चलती है एवं अधिष्ठान चक्र (शिश्न) से होते हुए मणिपूरक चक्र (नाभि) तक पहुँचती है। यहाँ तक वाणी ''परा वाणी'' कहलाती है, कारण कि अभी तक वाणी का कोई स्वरूप स्पष्ट नहीं हुआ, मात्र संस्कार रूप से है। इससे आगे वाणी अनाहत चक्र (हृदय) में चली तो हृदय में पहुँचने पर भाव के रूप में प्रकट हुई एवं परा से ''पश्यन्ती वाणी'' बन गई। अनन्तर विशुद्धि चक्र (कंठ) में आई तो ''मध्यमा वाणी'' बनी एवं मुख में आकर ''वैखरी वाणी'' बन गई। वैखरी वाणी से नाम-गान ही नाम-संकीर्तन है।

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना।
सत हरि भजनु जगत सब सपना॥

(रा.मा. अरण्य ३९)

हरि को सत् न कहकर हरि भजन को सत् कहा, यह हरि नाम का वैशिष्ट्य है। प्रकट लीला में जब स्वयं भगवान् अवतरित होते हैं तो उनका नाम भी अवतरित होता है किन्तु यथा समय भगवान् तो अंतर्धान हो जाते हैं किन्तु नाम नहीं।

''चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ।''

(रा.बा.का. २२)

रसीली ब्रज यात्रा

बरसाना

(शास्त्रों में ब्रजपरिक्रमा का अत्यधिक महत्त्व है। स्वयं नंदनंदन ने ब्रह्मा जी से कहा- ''ब्रज परिकम्मा करहु देह को पाप नसावहु'' (सूरसागर) (भा. १०/१४/४१ त्रिः परिक्रम्य) मान मंदिर द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ ''रसीली ब्रज यात्रा'' भाग-१ के माध्यम से आइये हम लोग ब्रज यात्रा करते हैं। इस क्रम में पहला पड़ाव हैं

बरसाना

बरसाना के अनेक नाम हैं, जैसे रस की वर्षा होने के कारण '**बरसाना**' श्रेष्ठ पर्वत चोटी होने के कारण '**वरसानु**' वृषभानु की राजधानी होने के कारण 'वृषभानुपुर' और बड़ी शिखर होने के कारण '**वृहत्सानु**'।

यद्यपि वृन्दावन में ही बरसाना है किन्तु श्रीजी के स्थाई निवास के कारण यहीं से सम्पूर्ण वृन्दावन रसमय बनता है। केवल प्रणाम करने से जो चिंतित वस्तुओं का दान करने वाली, ब्रज देवियों की शिरस्थ चूड़ामणि, वृषभानु वंश की कुलमणि, निखिल रसामृत मूर्ति श्रीकृष्ण की विरहशामिनी शांतिमणि, निकुञ्ज भवन की शोभामणि हैं, वे श्रीजी हम सभी के हृदय की अमूल्यमणि जिस बरसाने में विराजती हैं, उस वृषभानपुर की दिशा को प्रणाम है।

''तस्या नमोऽस्तु वृषभानुभुवो दिशेऽपि''

(रा.सु.नि. १)

यद्यपि २० कोस वृन्दावन सभी रसमय है किन्तु उस सम्पूर्ण वृन्दावन में व्यास जी को श्रीकृष्ण नहीं मिले किन्तु बरसाना रूपी वृन्दावन में मिल गये।

लागी रट राधा-राधा नाम।
ढूंढ़ि फिरी वृन्दावन सबरो नन्द डिठोना श्याम॥
कै मोहन कै खोर साँकरी कै मोहन नंदगाँव।
'व्यास दास' की जीवन राधे धनि बरसानो गांव॥

(व्यास जी)

यहाँ के वास की आस शिव जी और शेष जी भी करते हैं।

बरसाने के वास को, आस करें शिव शेष।
ह्याँ की महिमा को कहे, जहाँ कृष्ण धरे सखि वेष॥

सम्पूर्ण ब्रज वृन्दावन का रत्न, वृषभानु भवन बरसाना में ही रहता है, जिसके प्रलोभन में 'सच्चिदानन्द ब्रह्म' चोर बनकर बरसाने आता है।

ब्रज में रतन राधिका गोरी।
हर लीनी वृषभानु भवन ते नंदसुवन की चोरी॥

(कृष्ण दास जी)

बरसाने में श्रीकृष्ण छद्म से सखी वेष धारण कर चोरी करने आते हैं। 'बरसाने' का यह गौरव क्यों है?

सुभग गोरी के गोरे पांय।
धनि वृषभानु धन्य बरसानो धनि राधा की माय।
जहाँ प्रगटी नटनागरि खेलत पति सों रति पछताय॥
जाके परस सरस वृन्दावन बरसत रसनि अघाय।
ताके शरण रहत काको डर कहत 'व्यास' समुझाय॥

(व्यास जी)

हित हरिवंश जी ने बरसाने चलने की आज्ञा की है

चलो वृषभानु गोप के द्वार॥

और

देखि सखि राधा प्रिय केलि॥
ये दोउ खोर खिरक गिरि गहवर।
विहरत कुँवरि कंठ भुज मेलि॥

खोर (साँकरी), गिरि (ब्रह्माचल), खिरक (वृषभानु खेरा), वन (गहवर वन)- ये चारों केवल बरसाने में ही हैं। गहवर वन और खोर साँकरी की लीला 'स्वामी हरिदासजी' ने भी गायी है-

हमारो दान मारयो इन

अथवा

प्यारी जू आगैं चलि गहवर वन भीतर।

मोर कुटी की मोर लीला भी 'स्वामी जी' ने गायी है। महावाणी जी में भी

''गहवर निकुञ्ज कुञ्ज के आगे अद्भुत ठौर''

यही कारण है कि ब्रह्मा जी को रस प्राप्ति के लिए बरसाने में ही पर्वत बनने का आदेश प्रभु ने दिया था।

अथ वृषभानुपुरोत्पत्ति माहात्म्य वर्णनं वाराहे पाद्मे च-
पुराकृतयुगस्यान्ते ब्रह्मणा प्रार्थितो हरिः।

ममोपरि सदा त्वंहि रासक्रीडां करिष्यसि॥
सर्वाभिर्ब्रजगोपीभिः प्रावृट्काले कृतार्थकृत।

अर्थात् : सतयुग के अन्त में ही ब्रह्मा जी ने श्रीकृष्ण के निकट प्रार्थना किया कि आप गोपियों के साथ मेरे ऊपर विहार करें।

प्रभु ने कहा- ''आप बरसाना जाकर पर्वत बन जाओ, वहीं तुम्हें लीला दर्शन होगा।'' इसी से ब्रह्मा जी बरसाने में पर्वत बने। एक कथा आती है, बरसाने के पर्वतों के बारे में कि जब त्रिदेव सती अनुसूइया की परीक्षा लेने गये थे तो वहाँ सती ने ब्रह्मा, विष्णु, शिव को श्राप दिया कि तुमने बड़ा अमर्यादित व्यवहार किया है, इसीलिए जाओ, पर्वत बन जाओ तो तीनों देवता पर्वत बन गये और उनका नाम त्रिक् हुआ।

सूर्यवंशी महाराज दिलीप हुए, ये बड़े ही गौ भक्त थे। राधा रानी सूर्यवंशी थीं और राम जी भी सूर्य वंशी थे। इनकी परम्परा इस प्रकार है। महाराज दिलीप तक तो एक ही वंश आता है। दिलीप ने गौ भक्ति की क्योंकि उनको कामधेनु गाय का श्राप था। ये जब एक बार स्वर्ग में गये तो जल्दी-जल्दी में कामधेनु गाय को प्रणाम करना भूल गए थे, कामधेनु ने श्राप दे दिया कि तुम पुत्र की इच्छा से जा रहे हो, तुम्हें पुत्र नहीं होगा। ये श्राप उस समय दिलीप सुन नहीं सके थे क्योंकि आकाश में इन्द्र का ऐरावत हाथी क्रीड़ा कर रहा था। दीर्घकाल तक भी प्रयत्न करने पर उनको जब पुत्र की प्राप्ति नहीं हुई तब ये गुरु वशिष्ठ के पास गए। उन्होंने ध्यान करके बताया कि राजन्! तुम्हें तो श्राप है, तुम्हें पुत्र कभी हो ही नहीं सकता क्योंकि यह कामधेनु का अमोघ श्राप है। वशिष्ठ जी ने कहा- ''तुम गौ सेवा करो, कामधेनु की पुत्री नन्दिनी हमारे पास है, वह भी

कामधेनु है, एकमात्र वही इस श्राप को नष्ट कर सकती है'', तब दिलीप ने अद्भुत गौ सेवा की।

इनकी परीक्षा भी हुई, परीक्षा में सिंह ने आक्रमण किया और दिलीप ने अपना शरीर सिंह को दे दिया। सिंह बोला- ''मैं पार्वती से नियुक्ति सिंह हूँ, तुम इस साधारण गाय के लिए अपना शरीर क्यों नष्ट करते हो, जीवित रहोगे तो अनेक तरह की तपस्या आदि कर सकोगे।''

आस्वादवद्भिः.....(रघुवंश २/५)

दिलीप ने कहा- ''यह शरीर जीवित रखने से कोई लाभ नहीं, अगर हम गाय को नहीं बचा सकते, इससे तो मर जाना अच्छा है। मनुष्य को उतनी ही देर जीना चाहिए, जब तक मशाल की तरह उस में प्रकाश हो। अगर प्रकाश न रहे तो जीने से कोई लाभ नहीं, उससे अच्छा है मर जाना।'' सिंह ने कहा- ''तैयार हो जाओ मरने के लिए'', दिलीप तैयार हो गए। सिंह आकाश में ऊपर उछला, ये सिर नीचे करके बैठ गए, हिले नहीं कि सिंह हमारे ऊपर प्रहार करेगा। तब तक क्या देखते हैं कि एक फूलों की माला आकाश से उनके ऊपर आकर पड़ गयी। उन्होंने सामने देखा तो गाय मुस्कुरा रही थी, बोली- ''मैंने तुम्हारी परीक्षा ली थी, तुम इसमें उत्तीर्ण हो गये हो। जाओ मेरी माँ का श्राप मिट गया। अब तुम्हारे एक बड़ा प्रतापी पुत्र होगा, जिसका नाम रघु होगा।'' उस गौ सेवा को देख करके राजा दिलीप के लड़कों में से जो धर्म नाम के सबसे छोटे लड़के थे, उन्होंने कहा कि हमें राज्य नहीं चाहिए। हमें कुछ नहीं चाहिए। हम तो केवल गाय की सेवा करेंगे। उसी वंश में आगे चलकर अभयकर्ण हुए। शत्रुघ्न जी जब ब्रज में आये तो अभय कर्ण को साथ लाये क्योंकि ये भी बड़े गौ भक्त थे। शत्रुघ्न जी जानते थे कि यह भूमि गाय के लायक है।

वाल्मीकि रामायण में एक प्रसंग आता है कि जब सीता जी वनवास के समय यमुना जी को पार कर रही थीं, यमुना जी को पार करते समय सीता जी ने यमुना जी की वन्दना की। उन्होंने देख लिया कि यह यमुना ब्रज से आ रही हैं। वहाँ श्लोक है-

कालिन्दीमध्यमायाता.....पुरीमिक्ष्वाकुपालिताम्॥

(वा.रा.अयो.का. ५५/१९/२०)

सीता जी ने कहा- ''हे माँ! मैं तेरी हजारों गायों से सेवा करूँगी।'' सीता जी भी ब्रज भक्त थीं।

जब अभय कर्ण जी यहाँ आये तो बड़े प्रसन्न हुए और गौ सेवा करने लग गए। इसीलिए रघुवंश का यह एक अलग वंश आता है, इन्हीं के वंश में रशंग जी हुए, जिन्होंने बरसाना बसाया है और इन्हीं के वंश में राधा रानी का प्राकट्य हुआ। यह बरसाने का इतिहास है। रशंग जी के वंश में ही राजा वृषभानु और राधा रानी हुई हैं। ये सूर्यवंशी थीं और श्रीकृष्ण चंद्रवंशी थे।

महारानी कीर्ति जी धन्य हैं, जिनके यहाँ राधा रानी जन्मी। महारानी कीर्ति मानवी कन्या नहीं हैं, इनका अवतार हुआ है। किसी समय में अपने पूर्व जन्म से पहले ये तीन पितृश्वरों की दिव्य कन्यायें थीं। ये कथा शिवपुराण (पार्वती खण्ड, अध्याय-२) में आती है। जब ये श्वेतद्वीप गयीं तो वहाँ सनकादि आये। इन्होंने उठकर सम्मान नहीं किया तो उन्होंने श्राप दे दिया कि तुम मानवी बन जाओ। भगवान् ने कहा कि ये वरदान है, श्राप नहीं है। तुम्हें नित्य शक्ति को जन्म देने का अवसर मिलेगा। उन तीनों कन्याओं में से एक सीता जी की माँ बनी- **'सुनैना',** एक पार्वती जी की माँ बनी- **'मैना'** और एक राधिका जी की माँ बनी- **'कलावती'**। ये कलावती के रूप में प्रकट हुई, जो महाराज सुचन्द्र की स्त्री बनीं। दोनों ने बड़ा तप किया। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्मा जी प्रकट हुए और उनसे वरदान माँगने को कहा। इस तरह महाराज सुचन्द्र जी को मोक्ष का वर प्राप्त हुआ। कलावती जी बोलीं कि- ब्रह्मा, मैं तुमको श्राप दे दूँगी। तुमने मेरे रहते इनको मोक्ष क्यों दिया? ब्रह्मा जी घबरा गए क्योंकि ये महासती थीं। वो बोले कि ठीक है ये कुछ दिन तक यहाँ ऊपर रहेंगे और फिर तुमको गोलोकेश्वरी की माँ बनने का सौभाग्य मिलेगा, उसके बाद तुम्हारे साथ ही धाम में जायेंगे। वो ही महाराज सुचन्द्र और वही कलावती फिर से यहाँ प्रगट हुए। कलावती, कीर्ति हुई और इनकी कूँख से श्रीराधारानी भादों शुक्ल अष्टमी को प्रकट भई।

यहाँ श्री नन्दनन्दन श्री राधिका से मोहित होकर नित्य रहते हैं।

पतन् नित्यं राधापदकमलमूले ब्रजपुरे।
तदित्थं वीथीषु भ्रमति स महालम्पट मणिः॥

(रा.सु.नि. २३२)

भक्त सालबेग

(श्री बाबा महाराज के एकादशी सत्संग से संग्रहीत)

लालबेग नामक एक मुसलमान शासक था। एक बार उसने गजपति शासक जगन्नाथ पुरी के राजा को पराजित कर दिया और किसी अत्यंत रूपवती हिन्दू कन्या का अपहरण करके ले गया और उसको अपनी रानी बनाया। वह स्त्री लालबेग और उसकी फौज से कैसे लड़ती, विवश होकर उसे इस मुसलमान शासक की पत्नी बनना पड़ा। लेकिन वह भक्त थी। उसके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम रखा गया 'सालबेग'। यह बालक अपने पिता के साथ युद्ध में भी लड़ता था और हिन्दुओं को हराता था। जिस जगन्नाथ पुरी के राजा को लालबेग ने हराया, उस युद्ध में सालबेग भी लड़ा था और उसके सिर में चोट लग गयी थी। पिता ने उसका बहुत उपचार कराया लेकिन सालबेग की चोट ठीक नहीं हुई। लालबेग की अन्य भी कई रानियाँ थीं और बहुत से पुत्र थे। जब सालबेग का स्वास्थ्य नहीं सुधरा तो पिता ने उसे छोड़ दिया। सालबेग बिस्तर पर पड़ा दर्द के कारण चिल्लाता रहता था। उसकी माँ हिन्दू थी, भक्त थी, उसने अपने बेटे को नहीं छोड़ा। वह दिन-रात उसे भगवान् के चरित्र सुनाया करती थी। सालबेग कहता था-माँ! अब मैं नहीं बचूंगा। माँ कहती थी- बेटा! तेरे पिता ने तुझे और मुझे छोड़ दिया क्योंकि उसकी और भी बहुत सी रानियाँ तथा उनसे कई पुत्र हैं। अब दुनिया में हमारा कोई नहीं है, केवल भगवान् है। लालबेग ने पूछा- माँ! भगवान् कौन है? माँ कहती थी- भगवान् संसार का मालिक है, बड़ा दयालु है, उसे बुलाओगे तो वह आयेगा, वह हमारी पुकार सुनता है। अपने पुत्र के अन्दर भक्ति और भगवान् के प्रति विश्वास उत्पन्न करने के लिए माँ उसे ध्रुव और प्रह्लाद की कथा सुनाया करती थी। सालबेग का सिर युद्ध में भाग लेने के करण घायल हो गया थी और वह मृत्यु के निकट पहुँच रहा था लेकिन माँ द्वारा सुनाये गये ध्रुव और प्रह्लाद के चरित्रों को बड़े ध्यान से सुनता था। कभी माँ उसे द्रौपदी की कथा सुनाती, कभी शबरी की कथा सुनाती। भक्तों का चरित्र सुनने से बालक सालबेग को भगवान् पर विश्वास हो गया। विश्वास से ही भगवान् मिलते हैं। हम लोगों को विश्वास नहीं है इसीलिए भगवान् की प्राप्ति नहीं हो पा रही है।

माँ ने बेटे से कहा- मैं तो हिन्दू स्त्री हूँ, तेरी मदद नहीं कर सकती, तेरा पिता मेरा अपहरण करके ले आया और बलपूर्वक मुझे अपनी रानी बनाया और तुझे उत्पन्न किया किन्तु भगवान् तो हमारे हृदय में है, सर्वव्यापी हैं, तू भगवान् का स्मरण कर। भगवान् आयेंगे और तेरी रक्षा करेंगे। सालबेग बोला माँ! मैं तो मरने वाला हूँ। मैं ध्रुव तो हूँ नहीं कि छः महीने तप करूँ। माँ बोली- मरने वाला तो है लेकिन भगवान् आयेंगे। जिस दिन सच्चे हृदय से तेरी पुकार निकलेगी, उसी दिन भगवान् आ जायेंगे। माँ के इस प्रकार आश्वस्त किये जाने पर वह बालक खाट पर पड़ा हुआ गोपाल को पुकारने लगा। बारह दिन बाद एक चमत्कार हुआ। सालबेग बारह दिन तक लगातार गोपाल को बुलाता रहा क्योंकि वह जान गया था कि मेरी न कोई माँ है, न बाप है, मेरी रक्षा करने वाला कोई नहीं है। तब सच्चे मन से उसकी पुकार निकली।

मनुष्य सोचता है कि यह मेरा भाई है, यह मुझे बचाएगा, माँ बचाएगी, पिता बचाएगा। हम लोग मनुष्यों पर भरोसा करते हैं इसीलिए भगवान् नहीं आते। बचपन से ही बच्चा माँ का सहारा देखता है, फिर बड़ा हुआ तो पिता का सहारा देखता है। इस तरह से हम लोग नर आशा करते हैं। जबकि भगवान् ने कहा है-

मोर दास कहाइ नर आसा।
करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा॥
(रा.उ.का. ४६)

जब तक तुम नर आशा करते हो तो इसका आशय यही है कि तुम्हारा भगवान् पर विश्वास नहीं है। जब सब आशायें टूट जाती हैं तब भगवान् की आशा आती है। अतः सब ओर से आशा-विश्वास हटाकर एकमात्र गोपालजी को ही पुकारने के कारण बारह दिन में ही सालबेग को भगवान् मिल गये। ध्रुव को फिर भी छः महीने में मिले थे क्योंकि सालबेग समझ गया था कि माँ-बाप, भाई-बन्धु, सब झूठा झगड़ा है, एकमात्र भगवान् ही सत्य हैं। बारह दिन जब बीत गये तो वह बेहोश हो गया क्योंकि उसके सिर में चोट लगी थी तथा बारह दिन तक उसने न कुछ खाया, न पिया। बेहोशी में उसे ऐसा अनुभव हुआ कि कोई आया है। वह गोपालजी ही थे, उन्होंने सालबेग के पास आकर मूर्छावस्था में ही उसके सिर पर अपनी चरण रज लगा दी। ऐसा उसे दिखाई पड़ा और उसके बाद वह पूर्ण स्वस्थ हो गया। बारहवें दिन की रात को यह घटना घटी थी। सालबेग उठकर बैठ गया और पुकारने लगा- माँ, माँ! माँ ने सोचा, अभी तो यह बेहोश था, फिर अब क्यों चिल्ला रहा है? माँ उसके पास गई तब तक सालबेग खाट पर बैठ गया था। माँ ने पूछा- अरे! तू तो बैठ गया। सालबेग- हाँ, माँ। माँ- तू तो मरने वाला था। सालबेग- माँ, मैं बैठ गया और अब देखो मैं चल सकता हूँ। माँ- बेटा, ये कैसे हुआ? सालबेग- माँ मैं बेहोश था। मूर्च्छावस्था में ही मैंने देखा कि एक साँवरा लड़का आया, उसके सिर पर मोरपंख था और हाथ में वंशी थी। पास आकर उसने मेरे सिर पर रज लगायी तथा इसके बाद मैं अच्छा हो गया और उठकर बैठ गया। वो कौन था? माँ- अरे! वही तो भगवान् था।

इस प्रकार भगवान् ने सालबेग पर कृपा की। इस कथा से यह शिक्षा मिलती है कि भगवान् है और सहायता देता है। जब मनुष्य सब सहारे छोड़कर भगवान को बुलाता है, सब सहारे मतलब नर आशा छोड़कर एकमात्र भगवान् का ही सहारा लेता है तब उसको भगवान् की सहायता अवश्य मिलती है। इसलिए नर आशा कभी नहीं करनी चाहिए।

आदर्श ब्रजवासी

(गोलोकवासिनी श्रीमती यमुना देवी)

ब्रज विभूति परम पूज्यनीय श्री श्री रमेश बाबा महाराज जी विगत साठ वर्ष से अधिक पूर्व से ब्रज की पावन धरा पर अखंड वास करते हुए धाम एवम् धामवासियों की लोकोत्तर सेवा, जनकल्याण एवं श्री जी की आराधना में सतत् संलग्न हैं। श्री बाबा महाराज के दैनिक सत्संग तथा रात्रिकालीन संकीर्तन-आराधना के माध्यम से अपने आध्यात्मिक जीवन को प्रगतिशील बनाने के उद्देश्य से जो श्रद्धालु-जिज्ञासुजन मानगढ़ पर आया करते हैं, उनका विगत साठ वर्षों से भोजन-प्रसाद सेवा के द्वारा पोषित करने का अति प्रशस्तिपूर्ण कार्य गहवर वन की गोद में बसे जिस दिव्य स्थल के द्वारा होता है, उसका नाम है 'श्रीराधा रस मंदिर'। शास्त्र के अनुसार-

वैष्णवो यस्य गृहे भुङ्क्ते तत्र भुङ्क्ते हरि स्वयम्।
हरिः यस्य गृहे भुङ्क्ते तस्य भुङ्क्ते जगत्त्रयम्॥

जिस घर में अथवा जिस स्थान पर वैष्णव (भक्त) भोजन करते हैं, वहाँ साक्षात् भगवान् भोजन करते हैं और जहाँ भगवान् भोजन करते हैं, वहाँ तीनों लोक भोजन करते हैं।

इस शास्त्र वचन का अक्षरशः पालन करते हुए, अभूतपूर्व, अति निःस्पृह भागवत वक्ता, राष्ट्रीय संत पंडित श्री रामजी लाल शास्त्री जी की माताजी एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की बेजोड़ भागवत व्यास साध्वी सुश्री मुरलिका जी की दादी गोलोकवासिनी प्रातः स्मरणीया श्रीमती यमुना देवी जी ने अपने आवास श्री राधा रस मंदिर में आने वाले संत-वैष्णव जनों की सेवा की आधारशिला रखी। स्वनामधन्या माता यमुना जी की दुर्लभतम महिमा के सम्बन्ध में कुछ कहना सूर्य को दीपक दिखाने के समान अति न्यून है, वस्तुतः यह तो अवर्णनीय विषय ही है।

पूज्यनीया माताजी प्राइमरी विद्यालय की अध्यापिका थीं, उनके पतिदेव गोलोकवासी प्रातः स्मरणीय श्री बाबूलाल जी भी प्राइमरी विद्यालय के अध्यापक थे। बरसाना के निकटवर्ती, ललिता सखी की जन्मभूमि ऊंचागाँव में यमुनाजी अध्यापन कार्य करतीं थीं। साधु-संतों, अतिथि, वैष्णव जनों के प्रति उनकी अपार निष्ठा थी। इसी निष्ठा के परिणाम स्वरूप वह अध्यापन कार्य के साथ ही साथ प्रतिदिन अपने हाथों से भोजन बनाकर साधु-संतों एवं अतिथि भक्तजनों की अत्यन्त प्रेम से सेवा किया करती थीं। उनका और उनके पतिदेव का वेतन अत्यधिक अल्प था, घर की आर्थिक स्थिति अति शोचनीय अवस्था में थी, ऐसी दुरूह परिस्थिति में भी उन्होंने अपने दैनिक भोजन-सेवाकार्य में कभी कोई विराम नहीं लगने दिया। निष्काम सेवा, त्याग और पूर्ण समर्पण की वह साकार प्रतिमा थीं। पूज्य श्री बाबा महाराज के प्रति उनकी निष्ठा और समर्पण अद्वितीय थे। प्रयाग से बरसाना के मानिनी के मानगढ़ आगमन होने पर श्रीबाबा महाराज के चरणों में उन्होंने अपने और अपनी संतानों के जीवन को पूर्णरूपेण समर्पित कर दिया। गहवरवन में श्रीबाबा महाराज की माताजी की सेवा में उन्होंने अपनी दोनों पुत्रियों को तथा पुत्र पंडित श्री रामजी लाल शर्मा जी को श्री बाबा महाराज जी की देव दुर्लभ सेवा में अर्पित कर दिया। प्रायः ही रात को उनके घर चोर आया करते थे। पंडित रामजीलाल शर्मा जी रात को भी बाबा महाराज के पास ब्रह्माचल पर्वत के शिखर मानगढ़ पर रहते थे लेकिन यमुना देवी ने चोरों का खतरा होने पर भी कभी अपने इन सुपुत्र से रात को घर में रुकने को नहीं कहा। वह स्वयं ही रात्रि को पंडित जी को बाबा महाराज के पास मानमंदिर भेज देती थीं। उन्होंने कभी भी गृह-सुरक्षा की ओर ध्यान नहीं दिया, चोरों की भी परवाह नहीं की। अतिथि जनों और मान मंदिर के संतों द्वारा प्रतिदिन भोजन वहीं करने तथा आर्थिक विपन्नता के कारण उस जमाने में रस मंदिर पर ४३ हजार रुपये का ऋण हो गया था। उस समय किसी पारिवारिक सदस्य ने बाबा के नाम एक पत्र लिखा कि मान मंदिर के सभी संत प्रतिदिन हमारे घर ही भोजन करते हैं, इसके अतिरिक्त अतिथि जन भी प्रायः भोजन के लिए आते ही रहते हैं, हमारे घर पर ४३ हजार रुपये का ऋण है। ऐसी स्थिति में हम लोगों का जीवन तो बरबाद ही हो जाएगा। वह पत्र जब श्री बाबा महाराज को मिला तो उन्होंने यमुना माताजी को समझाते हुए कहा कि इस पत्र को लिखने वाला ठीक कह रहा है। तुम्हारे घर पर अपार ऋण है, आर्थिक दशा शोचनीय है, ऐसी स्थिति में तुम साधु-संतों एवं अतिथि जनों की भोजन सेवा बंद कर दो। परन्तु सेवा-मूर्ति यमुनाजी ने अपनी सेवा-निष्ठा पर अटल रहते हुए महाराज श्री से स्पष्ट कह दिया- 'मेरे जीवित रहते तो यह सेवा कभी बंद नहीं होगी, मृत्यु के पश्चात् क्या होगा यह तो प्रभु ही जाने।' उनकी इस बेमिसाल सेवा-भावना का यह प्रभाव है कि उनके जीवित न

रहने पर भी रस मंदिर में होने वाली प्रसाद-सेवा नित्य निरंतर वृद्धि को प्राप्त होती जा रही है।

श्री बाबा महाराज के प्रति उनके दिव्य समर्पण और सेवा-निष्ठा को देखकर गाँव के कुछ लोग अकारण ही असहिष्णु हो उठे और एक बार तो रात्रि के समय ही ग्राम-पंचायत की ओर से उन्हें बुलाया गया और कहा गया कि तुम्हारा एक पुत्र तो मानगढ़ में बाबा के पास रहता है, तुम्हारी दोनों पुत्रियाँ बाबा की माताजी की सेवा में संलग्न हैं। तुम्हारा घर बरबाद हो चुका है, तुम्हारा तो वंश ही नष्ट हो गया। लोगों ने सोचा था कि यह स्त्री डर जाएगी लेकिन वह भयभीत नहीं हुई और उन अकेली स्त्री ने निर्भयता पूर्वक ग्रामपंचायत के सामने कह दिया- 'मैं मानमंदिर को एवं बाबा महाराज को जीवन में कभी नहीं छोड़ सकती। इसका परिणाम चाहे कुछ भी हो लेकिन मेरा निश्चय अटल है।'

जैसा कि भागवत में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है- '**मद्भक्तपूजाभ्यधिका**' मेरी पूजा से अधिक बड़ी है मेरे भक्त की पूजा तथा रामचरितमानस में गोस्वामी जी ने लिखा है-

'मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा।
राम ते अधिक राम कर दासा॥'

(रा.मा.उ.-१२०)

इन्हीं शास्त्र वाक्यों से प्रेरणा लेकर यमुना जी ने भी संतों-भक्तों को भगवान् से अधिक मानकर उनकी सेवा की। एकबार श्री बाबा महाराज की सेवा में रहने वाले दो संत श्री ब्रजराज जी और श्री माधवीशरण जी दिल्ली से रस मंदिर पहुंचे। उस समय संत सेवापरायणा यमुनाजी भोजन का थाल लेकर अपने गृह स्थित ठाकुर श्री राधा रास बिहारी लाल को भोग लगाने जा रही थीं। इन संतों को देखते ही ठाकुर जी के भोग का थाल यमुना जी ने उन्हीं की सेवा में प्रस्तुत कर दिया। दोनों संत आश्चर्यचकित होकर बोले- 'माता जी! ये क्या? यह तो ठाकुर जी के भोग का थाल है।' यमुना जी ने उत्तर दिया- 'आप लोग संत हैं, साक्षात् ठाकुर जी हैं। पहले आप लोग प्रसाद पाइये, राधा रास बिहारी लाल जी बाद में पायेंगे।'

इसीलिये तो वाराहपुराण में भगवान् ने कहा है-

मत्सेवनाच्छत गुणं मद्भक्तस्य तु सेवनम्।
मद्भोजनाच्छत गुणं मद्भक्तस्य तु भोजनम्॥

मेरी सेवा करने से सौ गुना श्रेष्ठ है मेरे भक्त की सेवा करना, मुझको भोग लगाने से सौ गुना श्रेष्ठ है मेरे भक्तों को खिलाना- पिलाना।

पतिदेव श्री बाबूलाल के दिवंगत होने से पूर्व यमुना जी ने उनकी पेंशन का सब धन उन्हीं के हाथों बाबा महाराज को समर्पित करवा दिया था। इसी प्रकार उन्होंने अपनी भी मृत्यु के पूर्व अपनी पेंशन का सारा धन श्रीबाबा महाराज को समर्पित कर दिया था। इन दोनों दिव्य दम्पत्ति की पेंशन का सारा धन इस प्रकार मानबिहारीलाल की सेवा में पहुँच गया।

यमुना देवी जिस समय ऊंचा गाँव में अध्यापन कार्य करती थीं, उन दिनों वहां ब्रह्मचारी जी नामक एक महात्मा निवास करते थे। एकबार उन्होंने श्री बाबा महाराज से भागवत सप्ताह यज्ञ ऊंचा गाँव में करने की प्रार्थना की। वह एक असंग्रही महात्मा थे, उनके पास न धन-बल था, न जन-बल था। उनके आग्रह पर जब श्री बाबा महाराज भागवत कथा करने ऊँचागाँव गये तो उन्होंने एक टूटे से तखत को बिछाकर बाबा महाराज से उसी पर विराजित होकर कथा करने के लिए कहा। उनकी कुटिया पर भागवत कथा को श्रवण करने कोई श्रोता नहीं आया। एकमात्र श्रोता थीं केवल यमुना देवी। उन्होंने सात दिन तक अकेले ही श्री बाबा महाराज के श्री मुख से श्रीमद्भागवतकथा का श्रवण किया। उनकी इस कथा- निष्ठा को देखकर अन्त में पूरा गाँव कथा श्रवण हेतु आया।

अपने अंतिम समय में वह गंभीर रूप से बीमार थीं। एकबार पूज्य श्री बाबा उन्हें देखने गए तो यमुना जी ने अपनी सेवा में लगीं हुई पुत्रियों के बारे में कहा- 'महाराज! इन दोनों को यहाँ से ले जाओ, इन्हें श्री जी की सेवा में समर्पित कर दो।' बाबा महाराज बोले- 'अभी तुम बीमार हो, अभी तुम्हें इनकी सेवा की आवश्यकता है। इन्हें यहीं रहने दो।' परन्तु त्यागमूर्ति यमुना जी अत्यंत गंभीर रुग्णावस्था में भी अपनी पुत्रियों को अपनी सेवा से हटाकर भक्त भगवंत की सेवा में नियुक्त करना चाहती थीं।

श्री बाबा महाराज को ही सर्वस्व मानकर सम्पूर्ण जीवन उनके चरणों में न्यौछावर करने वाली इन महाभागा ब्रजदेवी का नित्य धाम-गमन भी अत्यंत चमत्कारिक हुआ। उनके अंतिम समय जब श्री बाबा महाराज रस मंदिर पहुंचे तो उनकी प्रेरणा से उस समय वहां नाम-कीर्तन किया जा रहा था। माता यमुना जी के शरीर को शय्या से उतारकर उनकी पुत्रवधू श्रद्धामयी मिथिलेशजी ने उनके सिर को पूज्य गुरुदेव श्री बाबा महाराज की गोद में रख दिया। करुणासिंधु की वात्सल्यमयी गोद का दिव्य संस्पर्श पाते ही इन महामहिमामयी देवी के प्राण पखेरू आनंदपूर्वक श्रीजी के नित्य लीला धाम की ओर गमन कर गए। उन्होंने श्री राधा रस मंदिर से जिस संत-भक्त सेवा की नींव रखी, विषम परिस्थितियों में भी उसे कायम रखा, आज उनके न होने पर भी प्रतिदिन हजारों की संख्या में भक्तजन उस दिव्य स्थान पर प्रसाद ग्रहण कर कृतकृत्य हो रहे हैं।

◗◗◗

भगवान के कपट में
विशुद्ध प्रेम

(श्रीबाबामहाराज द्वारा गोपीगीत-व्याख्या से संग्रहीत)

पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवानतिविलङ्घ्य तेऽन्त्यच्युतागताः।
गति विदस्तवोद्गीतमोहिताः कितव योषितः कस्त्यजेन्निशि॥

(भागवत १०/३१/१६)

गोपियाँ श्रीकृष्ण को 'कपटी' कहती हैं। (जबकि गोपीजन कृष्ण के करुणामय स्वरूप को भी अच्छी तरह से जानती हैं।) लेकिन प्रेम-वैचित्री (विशेषप्रेम 'सुदृढ़प्रेम, समर्थरति, सहजस्नेह') के कारण ब्रजगोपियाँ कृष्ण को 'कपटी' कह रही है।

'कपटी' शब्द का अर्थ सनातनगोस्वामीजी लिखते हैं-

''निजस्वभावाऽन्यथा कारणात्कपटी''

अपने स्वभाव को अन्यथा 'भीतर कुछ और, बाहर कुछ और' दिखाना, उसको कपटी कहते हैं। हम लोग 'कपटी' को बड़ा नीच समझते हैं, लेकिन 'कपटी' बहुत ऊँचा भी होता है। 'कपटी' को लोग कहते हैं कि बड़ा खराब, पेट का काला है लेकिन 'कपटी' बड़ा अच्छा भी होता है, कपटी से ज्यादा अच्छा कोई नहीं होता है; दोनों बाते हैं। जैसे- एक माँ भी कपट करती है बच्चे से। बच्चा है, दवाई नहीं खा रहा है और उसको किसी तरह से मुँह में छल करके खवा देती है, ये कपट है; अब ये कपट तो अच्छा है, ये कपट भगवान्भी करते हैं।

जब छोटा-सा गोद का बच्चा दौड़ता है सर्प, बिच्छू या आग पकड़ने के लिए तो माँ दौड़कर के उसे बचाती है गुस्सा दिखाकर; अब ये गुस्सा 'कपट' है। भीतर (हृदय में) बहुत बड़ा प्रेम है, लेकिन ऊपर से गुस्सा दिखाती है-

गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई।
तहँ राखइ जननी अरगाई॥

(रा.मा.अरण्य. ४३)

एकबार नारदजी ने पूछा था भगवान् से- महाराज! आपने हमारा ब्याह नहीं होने दिया था क्यों? तो भगवान् राम ने उत्तर दिया था कि देखो मुनि! हित किसमें है? ये बच्चा नहीं जानता। ये तो मैं जानता हूँ, इसीलिए मैंने ऐसा छल किया तुम्हारे साथ, विश्वमोहिनी को ले गया और तुम देखते रह गए। तो ये कपट है। सनातन गोस्वामीजी ने 'कपटी' का अर्थ बहिर्मुखी नहीं किया क्योंकि ऐसा अर्थ परमात्मा पर लागू नहीं होता है। उन्होंने कहा- परमात्मा कपट करता है, अपने को उल्टे रूप में दिखाता जरुर है, लेकिन क्यों दिखाता है? हित के लिए या लीला के लिए या रस के लिए या प्रेम के लिए। ये कृष्ण में आदत है, बहुत कपटी हैं। इसीलिए तो गोपियाँ गाती हैं-

तुम तो घनस्याम जनम के कपटी।

आनंद तभी आता है जब कपट होता है। हर समय कृष्ण कपट करते हैं।

श्रीमद्भागवत के अनुसार श्रीकृष्ण द्वारा कपट-

मुष्णन्तोऽन्योन्यशिक्यादीन् ज्ञातानाराच्च चिक्षिपुः।
तत्रत्याश्चपुनर्दूराद्धसन्तश्च पुनर्ददुः॥

(भा. १०/१२/५)

जब सब ग्वालबालों के साथ श्रीकृष्ण गौचारण को जा रहे हैं। सब ग्वालबाल अपनी-अपनी छाक-पोटरी बाँधे हुए हैं (काऊ की मैया ने लडुआ बाँध दिए हैं, काऊ की मैया ने गोझा बाँध दिए हैं कि जंगल में छोरा खायेंगे।) अब ग्वालबाल जा रहे हैं, पीछे से श्यामसुन्दर ने काऊ की पोटरी चुरा लियो, अब जो (ग्वालसखा) आगे जा रह्यो झूमतो-झूमतो फिर याद आई मेरी पोटली कहाँ! अरे, पोटली तो काऊ ने ले लियो, झट मुड़ के देख्यो, बोल्यो- अरे, ऐ नंद के तेने चुराई है, तू ही पीछे आ रह्यो है, पीछे वालो ही चोर है। ला, नंगा-झाड़ा दे। जब पहुँचो वहाँ तो झट पोटली फेंक दियो दूसरे ग्वालन पै और वहाँ दौड़ के गयो तो वाने तीसरे ग्वाल पै फेंक दियो, बोले-ये क्या है? ये ही तो ग्वाल-लीला है, याही को नाम प्रेम है। (यही कपट है, चोरी बिना कपट के नहीं होती है। नहीं, तो श्यामसुन्दर वाके लडुआ थोड़े ही खायेंगे, श्यामसुन्दर तो और चुराय-चुराय खवावैं माल-मसाले (माखन आदि), जब ही तो इतनी बड़ी मण्डली (टोल) बनी भई है।) तो इसलिए श्यामसुन्दर का स्वभाव है कपट को। अपने वास्तविक स्वरूप को छिपावै वाकौ नाम कपट है। (अपने स्वरूप को बदलकर दिखानौ ही कपट है।)

ब्रजगोपीजनों ने श्रीकृष्ण को कितव 'कपटी' कहा। कपटी संसार में बहुत खराब माना जाता है। परन्तु कपटी बहुत अच्छा भी होता है।

'कपट' बुरा कब है? जब हम कपट करके किसी को

ठगते हैं, कपट करके किसी से छल करते हैं, कपट करके पाप करते हैं, कपट करके धोखा देते हैं, कपट करके व्यभिचार करते हैं तो वो कपट बुरा है। कपट अच्छा कब है? जब कपट करके कुछ अच्छा काम करते हैं किसी का भला करते हैं, किसी का प्राण बचाते हैं, किसी की गुप्त सेवा करते हैं' उसको पता नहीं पड़ता है; तो उस कपट को अच्छा माना गया है। भगवान् कपटी हैं, क्योंकि उनकी हर क्रिया भक्त के कल्याण के लिए होती है, उनका कपट प्रेम को बढ़ाने के लिए होता है, उनका कपट जीव को लाभ देता है; जैसे उदाहरण के लिए देखिये- एकबार नारदजी भजन कर रहे थे। कामदेव ने इन्द्र की प्रेरणा से नारदजी का ध्यान तोड़ने के लिए बहुत बड़ी माया फैलाया, अप्सराओं को लाया, वे नाचीं-कूदी जिससे नारदजी मोहित हो जाएँ। नारदजी पर कोई जादू नहीं चला, उनको अहं भाव (अहंकार) हो गया कि मैं बड़ा ब्रह्मचारी हूँ। महादेव बाबा ने कहा कि आप अपनी तारीफ भगवान् के पास मत करना, महादेवजी ने कपट सिखाया कि बड़ों के पास जाकर के अपनी तारीफ नहीं करना चाहिए, पाप लगता है, दोष लगता है। बड़ों के पास पहुँचकरके अपने को छोटा बताओ। बहुत से लोग महात्माओं के पास जाकर के अपनी, अपने परिवार की, अपने खानदान की सबकी तारीफ करते हैं, इससे उनका पुण्य नष्ट हो जाता है। अगर बड़ा भी हो तो अपने को छिपाना चाहिए। महादेव जी ने कहा कि देखो, तुम भगवान् के सामने अपनी तारीफ मत करना, अगर प्रसंग चल जाय तो इस बात को छिपा लेना (यानि कपट हुआ), क्यों छिपा लेना? क्योंकि बड़ों के पास जा करके तारीफ करोगे तो पुण्य नष्ट होता है। नारदजी ने कपट नहीं सीखा, कपट सीखना चाहिए था। आखिर में हुआ क्या? हुआ ये कि विश्वमोहिनी लड़की पर मोहित हो गये। उनके भीतर अहंभाव (बड़प्पन) को देखकरके भगवान् ने माया किया, जिससे अहंभाव (मैं) दूर हो जाय। भगवान् माया (कपट) करते हैं भक्त के कल्याण के लिए।

ये मैं (अहंभाव) भगवान् से अलग कर देता है। याद रखो- ये जो 'मैं' है, हमलोग अपना बड़प्पन सोचते हैं, बस यही भगवान् से दूर करता है। हमलोग अपने को अच्छा समझते हैं, अच्छा कर्म करने वाला समझते हैं, ये सब अहंभाव है जो भगवान् से अलग कर देता है। हम सोचें कि हम बड़े विरक्त हैं, गृहस्थी सोचे कि हम बड़े दानी हैं- हम टूक डालते (रोटी देते) हैं, ये जितनी बड़प्पन की बातें हैं भगवान् से दूर कर देती हैं।

लीला में भगवान् कपट करते हैं जिससे रस बढ़े, प्रेम बढ़े। बिना कपट के लीला नहीं होती है, ये शास्त्र की बात है। रूपगोस्वामीजी ने कहा है-

'अहेरिव गतिः प्रेम्णाः स्वभाव कुटिला भवेत्।'

प्रेम की गति सर्प की तरह टेढ़ी-मेढ़ी होती है तब ही प्रेम की लीला चलती है, सर्प जैसे सीधी जगह भी टेढ़े-टेढ़े जाता है, सीधे कभी नहीं जायेगा लकीर की तरह, ऐसे ही प्रेम का स्वभाव है कि प्रेम में लीला तभी बनती है जब उसमें छल, कपट, झूठ होता है।

कपट-लीला

एकबार श्रीकृष्ण एक कुंज में लेटे थे। ब्रज गोपीजन आई श्यामसुन्दर को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते कि श्यामसुन्दर कहाँ हैं? श्यामसुन्दर जानबूझकरके, पीताम्बर ओढ़कर के सोने का बहाना करके सो रहे हैं, कुंज में लेट गये कि देखें ये गोपी क्या बात करती हैं, कपट किया, जाग रहे हैं लेकिन जागने के बाद भी ढोंग कर रहे हैं सोने का पीताम्बर ओढ़ लिया और जैसे कोई सोता है खर्राटे भरता है, ऐसे ही खर्र-खों करने लग गये, ये क्या है? लीला है, कपट है। अब ब्रजगोपीजन आई और एक गोपी बोली कि कन्हैया तो यहाँ सोय रह्यो है। बोलीं- अच्छा.....!!!

दूसरी गोपी बोली- हाँ, सोय तो रह्यो है। (बहुत होशियार हैं गोपियाँ भी, आपस में इशारे में बोलीं सोय नहीं रह्यो है।) यहाँ कृष्ण कपट कर रहे हैं तो उनसे गोपियाँ भी कपट कर रहीं हैं।

तीसरी गोपी बोली-'हाँ, दिन भर गैयान चरावै न!' तो चौथी गोपी इशारा कर रही है- 'कान से सब सुन रह्यो है, सोय नहीं रह्यो है।'

दोनों पक्ष से कपट हो रहा है, ठग विद्यायी चल रही है, अब जो ज्यादा कपटी होयगो वो ही जीतेगो।

फिर एक गोपी बोली-'कन्हैया को जगा दो।' तो दूसरी गोपी जगाने लगी और बोली- 'ओ श्याम! ओ कन्हैया!!' अब तो श्याम और जोर से खर्राटें लेने लगे। गोपियाँ बोलीं- अरे, बड़ी गहरी नींद से सोय रह्यो है। एक गोपी ने संकेत में कहा- 'बड़ो होशियार है, जाग रह्यो है।' फिर गोपियाँ बोलीं कि इसे कैसे जगाया जाय? तो स्वयं ही सलाह देने लगीं कि अब इसकी बुराई करना शुरू करो। अतः वे आपस में श्यामसुन्दर को सुनाते हुए कहने लगीं- अरे, ये तो चोर है, चोरन को और कहा काम है? सारी रात डोल्यो होयगो, चोरी करी होगी, अब सोय रह्यो है।

दूसरी गोपी बोली- 'ठीक कह रही है तू, आज इसने सारी रात जरूर चोरी करी होगी, तभी गहरी नींद में सोय रह्यो है, बीसन घर में गयो होयगो।' अन्य गोपियाँ बोलीं और या पर काम भी कहा है। दूसरी गोपी बोली- 'अरे, याको यह रोज को काम है। दिन में सोय ले और रात को घर-घर माल टटोलो करे।' आश्चर्य है! गोपियों ने श्यामसुन्दर की भर पेट बुराई करी लेकिन तब भी बोले नहीं चुपचाप पड़े रहे। तब गोपियों ने कहा- 'अब भी नहीं उठ रह्यो है, और ज्यादा बुराई करो याकी।' कुछ गोपियाँ बोलीं- 'याकौ सारो खानदान ही ऐसो है, याकी मैया भी ऐसी है।'

एक गोपी बोली- 'हाँ, याकौ नंदबाबा भी बड़ो छिनट्टा है।' जब मैया-बाप की बुराई सुनी तो खिसियाकर और मुँह से पीताम्बर हटाकर नंदलाल उठ बैठे और गुस्सा करने लगे- 'क्या बकती हो तुम लोग, मेरे मैया-बाबा की बुराई करती हो? तुम्हे खबर नहीं है, मैं सुन रहा हूँ।'

गोपियाँ बोलीं- 'महाराज! तुम अगर पहले ही उठ जाते तो तुम्हारे मैया-बापन की गाली काहे को मिलती। ये तो तुम्हारे लक्षण ही गाली दिला रहे हैं, तुम इन कपटन को क्यों कियौ करो?'

अब समझो कि इस कपट के बिना लीला नहीं चलती, यह कपट प्रेम का रस है। कहीं भी जाओगे, कपट के बिना प्रेम की लीला नहीं चलेगी। ये जितना भी कपट है ये प्रेम की लीला को बढ़ाता है।

कपट २ प्रकार का होता है। बुरा कपट कौन-सा है? वह है जिसके कारण दूसरे का नुकसान किया जाता है, धोखा दिया जाता है, दूसरे को मारा-पीटा जाता है। दूसरो कपट वह है जिसके कारण दूसरे का हित होता है। सच्चे संत हमेशा कपट करते हैं, जबकि वे इतने पवित्र होते हैं कि उनकी चरण-रज से भगवान् भी पवित्र हो जाते हैं। भगवान् ने स्वयं भागवत में कहा है-

अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः॥

(भा.११/१४/१६)

'मैं उसके पीछे-पीछे चलता हूँ कि उसकी चरण-रज मेरे ऊपर पड़े और मैं पवित्र हो जाऊँ।' सच्चा भक्त इतना बड़ा होता है कि भगवान् को भी पवित्र करता है लेकिन वह बड़ा ठग होता है, सच्चा भक्त सदा अपने को छिपाता है और कहता है कि मैं तो बड़ा पापी हूँ, नीच हूँ, बड़ा कामी हूँ, क्रोधी हूँ, लोभी हूँ, कुटिल हूँ। जैसे जो सच्चा धनी होता है वो सदा अपने आप को छिपाता रहता है। जो कम पैसे वाला होता है वो बड़ा इतराके चलता है और जो असली पैसे वाला होता है वो कभी भी अपना प्रदर्शन नहीं करता है। सच्चे भक्त क्या कहते हैं? जैसे गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है कि मैं धर्मध्वजी हूँ, धर्म के पीछे अपना पेट पालता हूँ, धर्म को बेचने वाला (धन्धाखोर) हूँ। राम नाम को बेचकर अपना पेट भरने वाला हूँ और ऐसा बड़ा पापी हूँ कि यमराज भी मेरा नाम सुनकर नरक का दरवाजा बंद कर लेता है, वह घबरा जाता है कि इतना बड़ा पापी अगर नरक में आ गया तो नरक का अस्तित्व भी समाप्त हो जाएगा।

ऐसा वह तुलसीदासजी कह रहे हैं जिन्होंने रामायण की रचना करके करोड़ों पतितों को पवित्र कर दिया। ऐसे तुलसीदास जी जिन्होंने असंख्य पतितों को पवित्र कर दिया, वह अपने बारे में कहते है-

'धींग धरम ध्वज धंधक धोरी।'

(रा.मा.बा.१२)

मैं ऐसा पापी हूँ, धर्मध्वजी (धन्धाखोर) हूँ।

'सुनि अघ नरकहुँ नाक सकोरी॥'

(रा.मा.बा.२१)

अरे, जिसकी चरण-रज से भगवान् भी पवित्र हों, वह कितना बड़ा झूठ बोल रहा है, कितना बड़ा कपटी है, अब विचार करो क्या यह कपट नहीं है?

दूसरा उदाहरण सूरदासजी का है- सूरदासजी जब गाते थे तो गोपालजी उनके सामने बैठकर सुनते थे। लेकिन वे क्या कहते हैं? वो कह रहे हैं कि हमारे समान पतित और कामी, क्रोधी, कुटिल, दुष्ट दुनिया में कोई नहीं है।

मो सम कौन कुटिल खल कामी।
जेहि तन दियौ ताहि बिसरायौ, ऐसौ नरक हरामी॥

'जिस प्रभु ने मुझे मनुष्य शरीर दिया, उसको मैं भूल गया, इतना बड़ा नमक हरामी हूँ।' यह बात वह सूरदासजी कह रहे हैं जिन्होंने सवा लाख पदों की रचना की, जिनके पदों को करोड़ों लोग गा रहे हैं और सदा गाते रहेंगे। इतना बड़ा भक्त और कितना बड़ा कपट कर रहा है। लेकिन यह कपट अच्छा है, भक्त वही है जिसके अन्दर दीनता होती है। महाप्रभुजी ने कहा कि 'तृणादपि सुनीचेन' भक्त इतना दीन होता है कि एक तिनके को भी अपने से बड़ा मानता है।

भगवान् या भक्त का कपट जीव का कल्याण कर देता है और हम जैसे लोगों का कपट जीव का विनाश कर देता है।

आत्मसमर्पण

(आचार्य श्री महेशचन्द्र जी शास्त्री, मान मंदिर)

संस्कृत में 'समर्पणम्' शब्द में सम उपसर्ग+अर्प्+ल्युट से निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है- सौंपना, देना, हस्तांतरण करना। आत्म समर्पण से तात्पर्य है अपने को प्रभु को, गुरु को, स्वामी को, राष्ट्र को सौंप देना। भगवान् के लिए अपने शरीर, इन्द्रियाँ, मन आदि जिसको भी अपना मान रखा है, जहाँ-जहाँ भी स्वत्व बुद्धि है, उस सबको भगवद्अर्पण करना ही सच्चा समर्पण है। कृष्ण सेवा के लिए अहंता-ममता का त्याग ही सच्चा समर्पण है। मेरे पास जो भी है वो श्रीकृष्ण व उनके जनों के लिए ही है। थोड़ी भी अहंता या ममता बचेगी तब समर्पण नहीं हो सकता। वास्तविक समर्पण मीरा का था, बलि महाराज का समर्पण पग-पग पर, एक-एक वाक्य में, जीवनचर्या में, व्यवहार में दिखाई देता है, जिन्होंने श्रीकृष्ण-प्रेम या धाम-प्रेम में अपना सर्वस्व त्याग किया, लौकिक धन, मान-प्रतिष्ठा, पद सब त्याग किया, क्योंकि कृष्ण चाहिए, कृष्णप्रेम तभी मिलता है। जब सब निष्कपट भाव से समर्पण होता है, तभी वो प्रभु कृपा करते हैं।

एक बहुत महत्वपूर्ण बात है जो साधारण लोगों की समझ में नही आ सकती, वह यह है कि किसी उच्च कोटि के महात्मा पुरुष ने हमारी कोई वस्तु स्वीकार कर ली तो हमारा परमार्थ उसी समय सिद्ध हो गया, क्योंकि उनकी आज्ञा से वह वस्तु प्रभु की सेवा में लग जाती है। यदि अपना रूपया-पैसा, वस्तु, पदार्थ उनकी आज्ञानुसार काम में आयें तो उतना ही आनंदानुभूति होना चाहिए, जितना कृष्ण द्वारा हमारी वस्तु स्वीकार किये जाने पर होता है।

जब तक कोई वस्तु प्रभु को हृदय से समर्पित नहीं की जाती तब तक वो उसे अपने नहीं मानते। भगवान् को किसी वस्तु, पदार्थ की आवश्यकता नहीं है, वो जिसकी वस्तु स्वीकार करते हैं, उसे कृतार्थ करते हैं। संत रूप से आपकी वस्तु ग्रहण करते हैं तो समझना कि आपका प्रभु से सम्बन्ध हो गया, इसलिए सभी अध्यात्मपथगामी जनों द्वारा मनसा-वाचा-कर्मणा या तन, मन, धन से महापुरुषों की सेवा करना चाहिए, यही सच्चे समर्पक की सावधानी है। एक बात ध्यानपूर्वक जान लेनी चाहिए कि वो परमात्मा न तो केवल त्याग से मिलते हैं, न बुद्धि से, न धनादि से, भगवान् जब जिसे स्वीकार कर लेते हैं तब यह ईश्वर को प्राप्त हो जाता है। कठोपनिषद में कहा गया है-

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्॥

यह आत्मा न तो प्रवचन (पुष्कल शास्त्र अध्ययन) से प्राप्त होता है न मेधा (धारण शक्ति) अथवा अधिक श्रवण करने से ही मिलने वाला है। यह जिसे स्वीकार कर लेता है, उसके द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

श्रीकृष्ण के लिए सर्वस्व अर्पण कर देना तो एक प्रकार का विश्वजित यज्ञ है। विश्वजित यज्ञ वास्तव में पूर्ण हो जाये तो उसके द्वारा विश्व को जीत लिया गया समझा जाता है। विश्व ही तो परमात्मा है, विश्व को जीत लिया तो परमात्मा को जीत लिया।

कोई वस्तु मेरी थी, मैंने इसे अर्पित कर दिया तो वह भी समर्पण नहीं माना जाता। भाव यह होना चाहिए कि भगवान् की वस्तु भगवान् के लिए समर्पित कर दी। पूर्वकाल में ब्राह्मणों की वस्तु ब्राह्मणों को अर्पित की है, गुरु की वस्तु गुरु को अर्पण की है, तभी श्रेष्ठ ब्राह्मण उसे स्वीकार करते थे। यदि कोई अपनी वस्तु समझकर देता तो स्वीकार नहीं करते थे। भूमि पर जो कुछ है, वह सब ब्राह्मणों का ही है, उनकी वस्तु का प्रसाद रूप में हम ग्रहण करते हैं। प्राचीन समय में इसी भाव से सब लोग सेवा करते थे।

स्वमेव ब्राह्मणो भुङ्क्ते स्वं वस्ते स्वं ददाति च।
तस्यैवानुग्रहेणान्नं भुञ्जते क्षत्रियादयः॥

(भा. ४/२२/४६)

भक्त (ब्राह्मण) अपना ही खाता है, अपना ही पहनता है और अपनी ही वस्तु दान देता है। दूसरे क्षत्रिय आदि लोगों को तो उसकी कृपा से अन्न खाने को मिलता है।

प्रत्येक साधक के लिए समर्पण का मार्ग अपनाना ही जीवन का वास्तविक लाभ है।

श्रीहनुमान प्रसाद पोद्दार

''प्रभु के सहचर (रसास्वादी) संत''

- रेनू जी (अमेरिका)

भाई जी ''श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार जी'' जिन्हें कल्याण के यशस्वी सम्पादक या गीता प्रेस के माध्यम से जाना जाता है, एक उच्चतम कोटि के भक्त, ज्ञानारूढ़ साधक एवं वीतरागी कर्मयोगी भी थे- यह सत्य कम लोग ही जानते हैं।

भाई जी की दिव्य यात्रा बाल्यकाल से ही आरम्भ हो गई थी। बालक मन्नू अपनी दादी के साथ मंदिर जाता तो पेड़ के नीचे बैठकर सहज ध्यान मग्न हो जाता था, दादी जी ने अपने प्रिय पौत्र को नाम-जप का अटूट अभ्यास करवा दिया था। भाई जी जब अपने क्रांतिकारी जीवन में अलीपुर जेल भेजे गये तो.....रात्रि में एकांत का अवसाद मिटाने के लिये इसी नाम-जप का सहारा लिया। अपने 'शिमलापाल' की एकांत नजरबंदी सजा के दो वर्षों में भाई जी ने 'नारायण' के चित्र का ध्यान ऐसा प्रगाढ़ एवं अनवरत (दिन-रात) किया कि अभ्यास स्वरूप उन्हें बंद एवं खुले नेत्रों से चर-अचर सभी प्राणियों में उन्हीं 'नारायण' के दर्शन होने लगे। शिमलापाल उनकी साधना स्थली बन गया। भाई जी प्राय: कहा करते थे, ''यह अति सामान्य एवं साधारण जीवन ईश्वर की कृपा का प्रसाद ही है- इसके अतिरिक्त कुछ नहीं है। मुझे प्रतिपल यह लगता है कि प्रभु मेरे जीवन को चला रहे हैं।''

कालान्तर में बम्बई प्रवास में भाई जी को अनेक दिव्य अनुभव हुए जिन्हें हम प्रभु की अनुभूति या आंशिक साक्षात्कार कह सकते हैं। भाई जी के गुरुवत् मौसेरे भाई श्री जयदयाल गोयन्दका जी 'सेठ जी' की प्रेरणा से मुम्बई में भाई जी ने प्रभु के निर्गुण निराकार स्वरूप की साधना की। इस साधना में अपनेपन का भेद सर्वथा मिट जाता है एवं जो व्यष्टि में है वह समष्टि में सिमट जाता है। मन उसी चेतन अवस्था में स्थित हो जाता है। भाई जी इस साधन में काफी आगे बढ़ गये थे कि तभी एक चमत्कारिक अनुभव उन्हें हुआ।

एक दिन निर्गुण ब्रह्म का ध्यान करते-करते सहसा नारायण के सगुण स्वरूप का प्राकट्य होने लगा। भाई जी बरबस सगुण

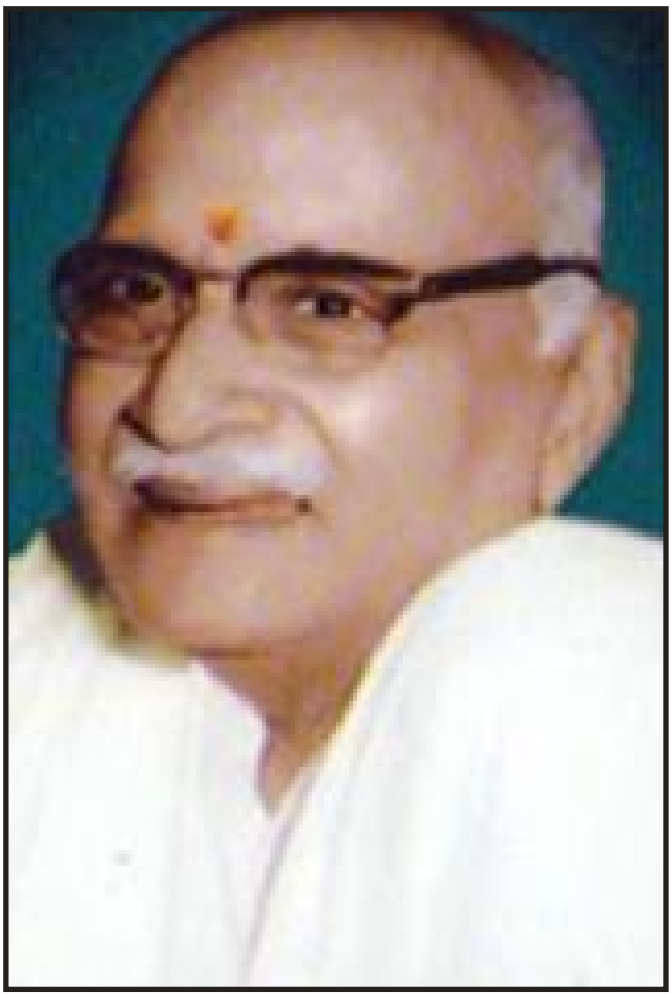

स्वरूप को हटाकर निर्गुण ब्रह्म पर ध्यान स्थिर करने का प्रयास करने लगे। परन्तु नारायण की स्मित छवि सामने से हटती ही नहीं.... भाई जी को सहसा छवि अनुभूति हुई- मानो प्रभु कह रहे हों... निर्गुण रूप भी मेरा है एवं सगुण स्वरूप भी मेरा है।''

भाई जी का यह अनुभव निर्गुण-सगुण पर वाद-विवाद करने वालों का मुख बंद करने के लिये पर्याप्त है।

१६ दिसम्बर १९२७ को बिहार के जसडीह नगर में प्रभु की ऐसी अपार कृपा बरसी, जो कभी न सुनी, न कही एवं न देखी। भाई के जागृत अवस्था में खुले नेत्रों ने मित्र-समाज के बीच साक्षात् नारायण के सगुण स्वरूप के दर्शन किये.... उस

साक्षात्कार में अनेक ऋषि-मुनि समाज ने भी भाई जी को सदेह दर्शन दिये, जिनमें नारद मुनि एवं अंगिरा ऋषि प्रमुख थे। कलियुग में साक्षात् अवतरण का अद्भत् दृष्टान्त है।

भाई जी के सत्य स्वरूप को जगत के समक्ष ''राधा बाबा'' ने प्रकट किया। उन्होंने भाई जी के अनन्य अनुयायी श्री गंभीर चन्द दुजारी जी एवं श्री चिम्मनलाल गोस्वामी के समक्ष एक रात्रि में रहस्योद्घाटन किया था। बाबा के शब्दों में-

आप विश्वास करें कि पोद्दार प्रभु का यह पाञ्चभौतिक ढांचा पूरी तरह राधारानी के अधिकार में है। ऊपर से वो संसार के कार्य कर रहे होते हैं परन्तु भीतर नित्य निरन्तर प्रभु की लीला चल रही होती है। उनका सूक्ष्म शरीर ''यूगल सरकार'' (श्रीकृष्ण एवं श्री राधारानी) को समर्पित है। अब प्रभु जब चाहें उनकी बाह्य वृत्तियों को लुप्त करके अपने साथ लीला में प्रवेश करा लें। हाथ में कलम पकड़े भाई जी या हाथ धोते समय भाईजी स्पन्दन हीन हो जाते हैं, काया निश्चल हो जाती है, आँखें पथरा जाती हैं..... आप सबने देखा है.... इसको भाईजी ''माया खराब'' होने की संज्ञा देते हैं.....। इसका अर्थ यह होता है कि उनका बाह्य जगत से नाता टूट जाता है एवं अपने प्रभु से संयोग हो जाता है।

श्री चैतन्य महाप्रभु के समकक्ष भाई जी का यह आंतरिक स्वरूप है, ऐसे उदाहरण संसार में विरले ही हैं।

भाई जी का मन तो सन्यास लेकर गंगाजी के तट पर अनवरत भक्ति भजन करने का था.... परन्तु प्रभु का मन भाई जी के माध्यम से सदा समाज के बीचों-बीच रहकर अनेक लोक- कल्याण के कार्य सिद्ध करवाना था। फलस्वरूप भाई जी ने ४५ वर्ष ''कल्याण'' का एकनिष्ठ सम्पादन किया, गीता-प्रेस का संवर्द्धन एवं संभाल की। हिन्दू समाज को रामचरितमानस, गीता, भागवत महापुराण, उपनिषद एवं अन्यान्य ग्रन्थों को परिमार्जित-संशोधित, शुद्ध पठनीय-संग्रहनीय एवं अति कम मूल्य पर प्रकाशित कर भेंट करने का कार्य कल्याण सम्पादन मंडल द्वारा हुआ है....यह सब कार्य भाई जी के नेतृत्व में हुआ।

नाम-जप का बृहत्तर कार्यक्रम भाई जी द्वारा आरम्भ किया गया, जहाँ भक्तों ने करोड़ों की संख्या में नाम-जप का संकल्प लिया। मानवाड़ियां की बही भगवन्नाम का हिसाब रखने लगी। गोरक्षा आन्दोलन, भागवत भवन का निर्माण रखने लगी। गोरक्षा आन्दोलन, भागवत भवन का निर्माण एवं अन्य अनेक सामाजिक आन्दोलनों का नेतृत्व भाई जी ने ईश्वरेच्छा समझकर किया। परन्तु भाई जी पद-सम्मान एवं उपाधियों से सर्वथा दूर रहे। न उन्होंने शिष्य बनाये न आश्रम स्थापित कियाऔर न भाई जी ने धनार्जित किया परन्तु उनके माध्यम से लोक-कल्याण के लिये लाखों की धनराशि उपलब्ध होती रही।

वर्ष २०१७ भाई जी की १२५वीं जन्म जयन्ती है। भाई जी के जीवन से दो प्रमुख सीख या आदर्श हम ले सकते है। प्रथम, भाईजी की आध्यात्मिक यात्रा उनके अथक पुरुषार्थ का परिणाम है, कोई साधक अपनी मेहनत से यह उच्चतम स्थिति प्राप्त कर सकता है।

द्वितीय, भाईजी जीवन पर्यत परिवार एवं समाज के बीच घिरे रहे, समाज की विसंगतियों से जूझते रहे.... परन्तु अपने प्रभु से एकनिष्ठ जुड़े भाई जी संसार में कमल की भांति रहे। प्रभु से यही प्रार्थना है कि उन अखण्ड-आध्यात्मिक ज्योति की एक किरण हमें भी मिल सके।

▶▶▶

कृष्ण पर जान देने वाले कोई और होते हैं।
नाम ले जीने मरने वाले कोई और होते हैं।
यूँ तो कीड़े हजारों उड़ते रहते आसमान हर दम,
मगर लौ पर जलने वाले कोई और होते हैं।

कृष्ण से प्यार है जिनका, उन्हें दुनिया से क्या मतलब।
झूठे धोखे में फॅसने वाले कोई और होते हैं।
कृष्ण का नाम अमृत है, पिया मस्ती में वो झूमा।
भोग विष्ठा में रमने वाले कीड़े और होते हैं।

गौ महिमा

(श्री बाबा महाराज के सत्संग से संग्रहीत)

भगवान श्री कृष्ण ने कहा है-

ब्रज वृन्दावन गिरि नदी पशु पक्षी सब संग,
इनसों कहा दुराव प्यारी ये सब मेरे अंग।

श्री कृष्ण बोले ये सारा ब्रज मेरा अंग है। वृन्दावन मेरा अंग है। श्री गिरिराज जी मेरे अंग है, यहाँ के पशु पक्षी, यहाँ की गायें ये सब मेरे अंग हैं। यहाँ का कण-कण श्री कृष्ण का अंग है। यहाँ निरंतर लक्ष्मी रहती हैं। -**'हरेर्निवासात्मगुणै रमाक्रीडमभून्नृप'** श्रीमद्भागवत में कहा गया है इसमें तीन विशेषताएं हैं।

(१) हरेर्निवास - नित्य यहाँ भगवान का निवास रहता है, करोड़ों लोग अपना घर छोड़कर यहाँ के दर्शन करने आते हैं। बड़े-बड़े चक्रवर्ती सम्राट ब्रज के लिए अपना सर्वस्व समर्पित कर देते हैं 'सरबस के सर धूरि दै बसिए ब्रज की धूरि'

(२) आत्मा - दूसरी बात यह है कि ब्रज भगवान का शरीर है, इस ब्रज में महात्मा लोग यहाँ रहते हैं, सब कुछ छोड़कर इस विश्वास से कि ये ब्रज भगवान का शरीर है, हम भगवान के भीतर निवास कर रहे हैं

(३) गुण - जितने गुण भगवान् में हैं वही सब इस धाम में हैं। भगवान् अनंत बन्धनों को काटकर मुक्त कर देता है सदा के लिए, वही काम यह ब्रज भूमि करती है। इन तीन कारणों से-

तत आरभ्य नन्दस्य व्रजः सर्वसमृद्धिमान्।
हरेर्निवासात्मगुणै रमाक्रीडमभून्नृप॥

(भा. १०/५/१८)

लक्ष्मी दिन रात वैकुण्ठ को छोड़कर यहाँ रहती हैं। हम लोग तो मिट्टी को भी नहीं छोड़ पाते। धन संपत्ति क्या है? मिट्टी ही तो है। जितने शरीर है सब मिट्टी हैं। हम इनमें ममता करते हैं। त्याग तो लक्ष्मी जी का है-

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजःश्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावका-स्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते॥

(भा.१०/३१/१)

ऐश्वर्य को देने वाली देवी इस ब्रज का आश्रय कर रही

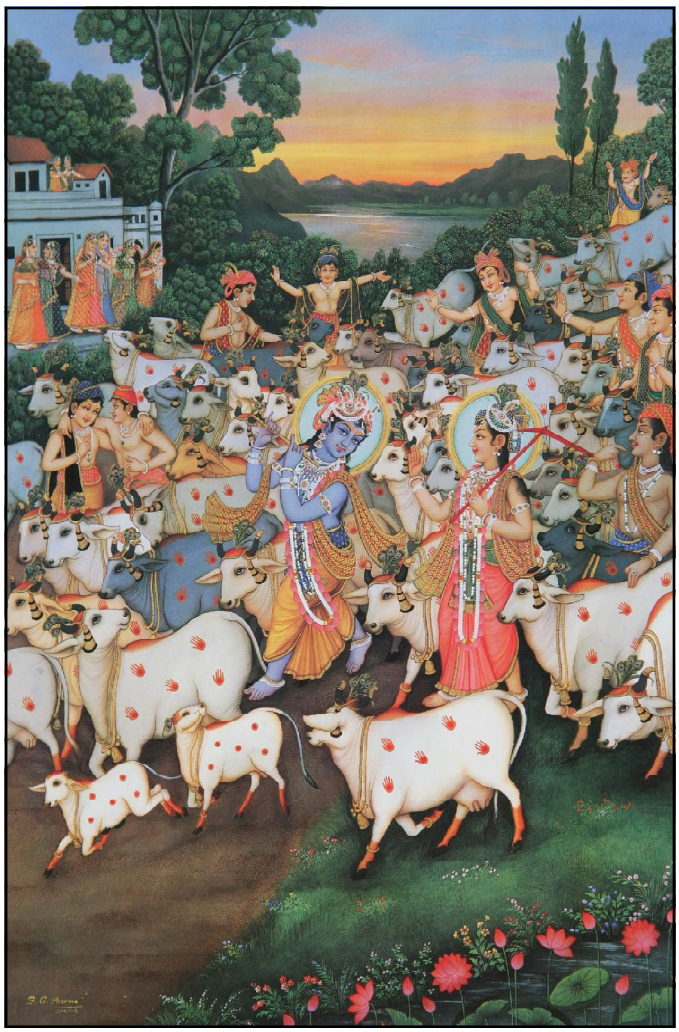

हैं। लक्ष्मी जी तरसती हैं।

कमलाहू तरसत रही हम न भयीं ब्रज गाय।
राधा लेती दोहनी मोहन दुहते गाय॥

युगल सरकार का रस मिलता हमको, क्योंकि राधारानी अंशिनी हैं जैसे श्री कृष्ण अंशी है। करोड़ों लक्ष्मियों से भी सुन्दर ब्रज की एक गोपी है और उन गोपियों की आराध्य-पूज्या हैं राधारानी। तो यहाँ की गाय जिसको लक्ष्मी जी तरसती हैं कि हम यहाँ की गाय बन जाते। गोविन्द स्वामी ने लिखा है कि ग्वाल बाल वैकुण्ठ में जाकर पछताये, बहुत पछताये कि इस वैकुण्ठ में वो सुख नहीं है जो ब्रज में था।

कहा करैं वैकुण्ठहिं जाय
जहाँ नहीं वंशीवट जमुना गिरि गोवर्धन नन्द की गाय।

जहाँ श्री गिरिराज जी नहीं, वंशीवट नहीं, यमुना जी नहीं और सबसे बड़ी बात तो जहाँ गौ माता नहीं। जिस ब्रज में

लताएँ, लताओं की कुंजें, बड़े-बड़े वृक्ष जिस पर चढ़कर श्याम सुन्दर वंशी बजाते थे - **कदम चढ़ी कान्ह बुलावत गैया।** किसी वृक्ष पर चढ़कर गायों को बुलाते हैं, बंशी बजाते हैं। उन पेड़ों पर बैठे पक्षी राधा-राधा रटते हैं। आगे पद में कहते हैं - **ताको बसिवो कहा ही सुहाय, कहा करैं वैकुंठहि जाय।** तो ग्वाल बालों को वैकुण्ठ में वह आनंद नहीं आया, जबकि भगवान् ने वहाँ उन्हें अपने चतुर्भुज स्वरूप का दर्शन भी कराया, क्योंकि वहां बड़े कड़े नियम थे, मर्यादा में खड़े रहो, बोलो नहीं, वैकुण्ठ नाथ का दूर से दर्शन करो आदि, तो ग्वाल बाल पछताये। सोचने लगे उस ब्रज को जहाँ हर समय कृष्ण की वंशी बजती थी। - **जहाँ नहीं धुन वंशी बाजत कृष्ण न पुरवत अधर लगाय।** वो ब्रज वृन्दावन पृथ्वी पर, उस वैकुण्ठ से अच्छा है - **जहाँ नहीं ये भुवि वृन्दावन बाबा नन्द यशोदा माय। गोविन्द प्रभु तजि नन्द सुवन को ब्रज तजि बसै मेरी वहां बलाय। कहा करैं बैकुण्ठहिं जाए।**

जो लोग लाखों वर्ष तप करके भगवान् का दर्शन नहीं पाते, वो दर्शन गौ-सेवा से सहज में हो जाते हैं। कथा आती है-एक लड़का था, उसने सुना-'कृष्ण कमलपत्राक्ष' कृष्ण जिनके कमल के पत्ते की तरह बड़े-बड़े नेत्र हैं। जिनका कीर्तन, श्रवण पुण्य है, वो भगवान् दाऊजी के साथ ब्रज में गौ-सेवा करते हैं, ग्वाल बाल निरंतर साथ रहते हैं, स्तुति करते रहते हैं।

वह लड़का ये कथा सुनकर कि श्री हरि ब्रज में अब भी गैया चराते हैं और गौ सेवा करते हैं, गौसेवा करने वालों को दर्शन देते हैं, उस पर कृपा हो गयी भगवान् की और वह वहाँ ब्रज में आ गया। वह गोसाईं विट्ठल नाथ जी से बोला -'क्या अब भी कृष्ण आते हैं यहाँ गैया चराते हैं?' गोसाईं जी बोले- 'ये लीला नित्य है, अखंड है सर्वत्र, व्यापक है।' वह बोला- 'अच्छा।' वह अब ब्रज में श्याम ढाक (भगवान की गौचारण भूमि का एक स्थल) के पास गया और वहां बैठ गया, संध्या को श्री नाथ जी चराके लौटते हैं। इस आशा से बैठ गया कि आज दर्शन होंगे, बैठा रहा, रात हो गयी लेकिन ठाकुर जी के दर्शन नहीं हुए। तब उसको विरह हुआ, गोपियों की तरह विकलता हुई, इतना तीव्र विरह हुआ कि उसने शरीर छोड़ दिया, उसी समय उसे दिव्य शरीर मिला (जैसे गोपियों को मिला था- **जहुर्गुणमयं देहं सद्यः प्रक्षीणबन्धनाः॥ १०/२९/११)** और वह ग्वाल बालों का शरीर धारण कर लीला में पहुंच गया। ऐसी अनेक कथाएं हैं।

तो ये निश्चित है कि गौ सेवा से कृष्ण दर्शन अवश्य होते हैं।

गौ महिमा

गोपालनं स्वधर्म्मो नस्तास्तु निश्छत्र पादुकाः
यथा गावस्तथा गोपास्तर्हि धर्म्मः सुनिर्म्मलः॥
धर्मादायुर्यशो वृद्दिर्धर्म्मो रक्षति रक्षतः।
स कथं त्यज्यते मातर्भीषु धर्म्मोऽस्ति रक्षिता॥

(गोविन्द लीलामृत, पंचम सर्ग-२८-२९)

भगवान श्री कृष्ण ब्रजवासियों के लिए, गौ - माता के लिए गँवार ग्वाले बन गए - **ग्राम्यैः समं ग्राम्यवदीशचेष्टितः॥ (१०/१५/१९)**

श्री कृष्ण कहीं पाठशाला में पढ़ने नहीं गए (जब छोटे थे) तब यशोदा जी ने देखा कि कृष्ण तो मान नहीं रहा है तो उन्होंने नंदबाबा से कहा 'देखो महर, मैं इससे कह रही हूँ पनहइया पहन ले, पर ये मना कर रहा है, कि पहले मेरी ९ लाख गायों को पनहइया पहनाओ तब पहनूंगा'। नंदबाबा सोचने लगे कि कह तो ठीक रहा है, धर्म की बात कह रहा है। अतः श्रीकृष्ण इतने बड़े गौ भक्त थे।

मान मन्दिर की माता जी गौशाला में इतनी सारी गायों का मातृवत पालन हो रहा है। यह एक असंभव कार्य है। लोग समझते हैं कि हम कर रहे हैं, अरे हम कैसे कर सकते हैं, हम तो गौशाला में सेवा करने भी नहीं आते, न हमारे पास पैसा है, हम कैसे इतनी गायों की सेवा कर सकते हैं, हम तो एक रोटी - मंगा हैं, जीवनभर मधुकरी मांगकर खाई है। हाँ, इतना अवश्य है कि धर्मों को व्यापार नहीं बनाया, कभी गौसेवा के नाम पर चंदा नहीं माँगा जाता। हम सेवा कर नहीं पाते पर समर्थन तो करते ही हैं। भागवत जी में आता है -

कर्तुः शास्तुरनुज्ञातुस्तुल्यं यत्प्रेत्य तत्फलम्॥

(भा. ४/२१/२६)

जो गौसेवा कर रहा है, उसकी किसी से निंदा मत करना, उससे द्वेष मत करना, क्योंकि गौ सेवा से भगवान बड़ी जल्दी प्रसन्न होते हैं। इसलिए हर व्यक्ति को गौसेवा करनी चाहिए।

(शेष अगले अंक में)

भगवत्कृपा का
वास्तविक स्वरूप

(श्री बाबा महाराज के प्रातः कालीन सत्संग से संग्रहीत)

भगवान् की कृपा के दो आयाम अर्थात् दो रूप होते हैं। एक तो जब भगवान् भक्त के भक्ति विरोधी तत्वों को नष्ट करते हैं, वो है 'प्रशम' तथा दूसरा रूप यह है कि 'प्रशम' के बाद भक्त को अपनी कृपा का पात्र बना लेते हैं, ये है 'प्रसाद'। प्रशम और प्रसाद इन दो शब्दों का प्रयोग श्रीमद्भागवत अंतर्गत रासपंचाध्यायी के प्रथम अध्याय के अंतिम श्लोक में हुआ है।

तासां तत् सौभगमदं वीक्ष्य मानं च केशवः।
प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत॥

(भा. १०/२९/४८)

रास लीला के प्रारंभ में ब्रजगोपियों के सौभाग्य मद और मान को देखकर उसके प्रशम (दूर करना), तदन्तर उन पर 'प्रसाद' (कृपा करना) करने के लिए भगवान् केशव उनके बीच से ही अंतर्धान हो गये।

इसको और स्पष्ट रूप से समझना चाहिए। यह हर भक्त के जीवन में होता है। जब 'प्रशम' होने लग जाता है तब भक्त चीखता-चिल्लाता है। धन का नाश हुआ, अपमान हुआ, उस समय आवश्यकता होती है सत्संग की। घबराओं नहीं, अगला रूप आयेगा भगवान् की कृपा का। ये तो 'प्रशमाय' रूप का था, अब 'प्रसादाय' रूप भी आयेगा। उपरोक्त श्लोक में प्रयुक्त शब्द 'प्रशमाय' और 'प्रसादाय' को समझो। ये हर भक्त के जीवन में आएगा। आता है और आयेगा। इसीलिए इसको समझना जरूरी है।

भगवान् ने कहा है-

यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः।
ततोऽधनं त्यजन्त्यस्य स्वजना दुःख दुःखितम्॥

(भा. १०/८८/८)

जिस पर मैं कृपा करता हूँ, उसके धन को छीन लेता हूँ। निश्चय ही उसका धन भगवान् हरण कर लेते हैं। अब जब धन छीन लेंगे तो मनुष्य चिल्लायेगा- 'अरे प्रभु! ये क्या किया, आज मुझे जमीन पर खड़ा कर दिया, कहाँ तो मैं इतना धनवान था।'

उस समय जो उसके स्वजन बनते थे, माँ-बाप, भाई-बन्धु, बेटा-बहू आदि सब उसे छोड़ जाते हैं। छोड़ना मतलब वैसा सम्मान नहीं करेंगे जैसा पहले करते थे। अब उसको ज्ञान होने लगता है कि जिस स्त्री, जिस बेटा-बेटी के लिए हमने भगवान् को छोड़ा या जिस धन के पीछे हम लगे रहे, वह असार है। तब वह दुखी होता है और पुनः धन प्राप्ति के लिए प्रयास करता है लेकिन अभी उस पर भगवान् की 'प्रशम' की द्रष्टि चल रही होती है। वह जिस उद्योग को आरम्भ करता है, उसे भगवान् नष्ट कर देते हैं। यह बड़ी क्रूरता है भगवान् की। धन प्राप्ति का उद्योग शुरू किया और उसे भगवान् ने ठप कर दिया। ठप क्यों किया, ताकि उसकी धन कामना अब समाप्त हो जाये।

स यदा वितथोद्योगो निर्विण्णः स्याद् धनेहया।
मत्परैः कृतमैत्रस्य करिष्ये मदनुग्रहम्॥

(भा. १०/८८/९)

भगवान् कहते हैं कि अब वह मेरे भक्तों के पास जायेगा। जब चारो ओर से ठोकर लगेगी तब वह मेरे भक्तों से सच्ची प्रीति करेगा। उसके बाद मैं कृपा कर देता हूँ। ये हैं भगवान् की कृपा के दो आयाम- 'प्रशम' और 'प्रसाद'। यही गोपियों के साथ हुआ, यही पक्ष राधा रानी ने रखा है और यह हर भक्त के साथ होता है। जब मनुष्य के अन्दर मद नहीं रहता तब शुद्ध भक्ति का प्रभाव रहता है। जब गोपियों का मद चला गया तब महारास हुआ है। इसके पहले महारास शुरू हुआ था भूमिका रूप में लेकिन यथार्थ रूप में नहीं हुआ था। जब सब तरफ से मद चला गया तब रासक्रीडा का आरंभ हुआ।

तत्रारभत गोविन्दो रासक्रीडामनुव्रतैः

(भा. १०/३३/२)

वस्तुतः अब शुद्ध महारास की शुरुआत हुई। इसके पहले वंशी बजी, नृत्य-गान हुआ लेकिन वास्तविक महारास की शुरुआत हुई है- (१०/३३/२) से। इसके पूर्व मद-निवृत्ति लीला हुई है, यह आवश्यक है। भगवान् ने मद-निवृत्ति के लिए यह खेल रचा। जब तक मद है, वह मनुष्य में शुद्ध प्रेम नहीं आने देता है। श्रीजी भी ऐसा करती हैं। राधा कृष्ण अलग नहीं है। मद-निवृत्ति या मद का शमन और कृपा, ये सबके साथ होता है, चाहे कोई भी हो। जब मद चला जायेगा तो साधक सरल भाव से आराधना करता है और उसी समय आनंद की प्राप्ति हो जाती है। अन्यथा इसके पहले तो अनेक बाधाएं आयेंगी। कहीं बीमारी लगेगी, कहीं धन नाश होगा, कहीं जन नाश होगा। अनेक तरह के क्लेश होते हैं, जब उनके नाश का समय आता है तब भागवत में इसका भी उल्लेख है-

अशेषसंक्लेशशमं विधत्ते गुणानुवादश्रवणं मुरारेः।

(भा. ३/७/१४)

जब वह गुणानुवाद का श्रवण, गायन अथवा कथन करता है तब सभी क्लेश नष्ट हो जाते हैं। जिन-जिन लोगों को क्लेश आया अथवा आ रहा है अथवा आयेगा, जिनको क्लेश नहीं आया, उनको आने वाला है। जिनको आ गया है, उनके क्लेश की शांति का समय जब आयेगा तब वे भगवान् का गुणगान करेंगे, गुणानुवाद श्रवण करेंगे। भगवद्गुणगान से जुड़े बिना क्लेशों का शमन नहीं होने वाला है।

राधारानी ब्रजयात्रा का इतिहास

डॉ. राम जी लाल शास्त्री जी (अन्तर्राष्ट्रीय कथा वाचक)
मान मन्दिर, बरसाना

भारतवर्ष समस्त विश्व का हृदय है। यहाँ जन्म लेने के लिए देवगण भी लालायित रहते हैं। ''महिमा भारतवर्ष की सुन देवता लुभायें। होयँ अनेक अवतार जहाँ हम क्यों नहिं जन्मे जांय॥'' इसमें ब्रज की गरिमा तो असमोर्ध्व है। जैसे शरीर में प्राण का महत्त्व होता है, बिना प्राण के वह निष्प्राण हो जाता है, उसी प्रकार ब्रज विश्व का प्राण है। ब्रज संस्कृति के उत्थान से, ब्रज के विकास से ही विश्व का मंगल सम्भव है।

जब से श्रीकृष्ण ने इस ब्रजभूमि को अपने जन्म से धन्य किया, लक्ष्मी जी ने तो तभी से इसे अपना निवास स्थान सदा-सदा के लिए बना लिया।

''जयति तेऽधिकं जन्मना ब्रजः श्रयत् इन्दिरा शश्वद्त्र हि।''
(भा. १०/३१/१)

अन्य तीर्थ तो इसलिये धन्य हैं कि भगवान् उन तीर्थों में नंगे पांव चले हैं परन्तु ब्रज की महिमा का कौन वर्णन कर सकता है, जहाँ ब्रजरज का स्वयं श्रीकृष्ण ने अपने श्रीमुख से आस्वादन किया है। ब्रजमण्डल की परिधि ८४ कोस की मानी गई है, इसमें भी चार स्थल प्रमुख हैं, ऐसी ब्रज रसिको की मान्यता है-

''ब्रज चौरासी कोस में चार गाँव निजधाम।
वृन्दावन अरु मधुपुरी बरसानों नन्दगाँव॥''

ब्रज ८४ कोस की परिक्रमा करने से वे अपराध भी नष्ट हो जाते हैं जिन्हे सर्वशक्तिमान् श्रीकृष्ण, जिनको समस्त कलाओं का पुंज कहा गया है- ''एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयं'' भी नष्ट नहीं कर पाते हैं।

ब्रह्मा जी ने मोहवश बछड़े और ग्वालों की चोरी की और उन्हें ब्रह्मलोक में ले गये। श्रीकृष्ण ने उतने ही रूप बना लिए, जितने उनके बछड़े और ग्वाले थे। इस प्रकार ब्रह्मा का मोह भंग किया परन्तु श्रीकृष्ण उनसे इस अपराध के कारण कि उन्होंने एक वर्ष तक ग्वाल व बछड़ों का वियोग कराया, बोले नहीं। रुष्ट रहे परन्तु जब ब्रह्मा जी ने 'त्रिःपरिक्रम्य' तीन बार ब्रज की परिक्रमा की, श्रीकृष्ण प्रसन्न हो गये। तभी से ब्रज ८४ कोस की परिक्रमा का प्रारम्भ हुआ। इस ब्रजभूमि में कितने ही ब्रजनिष्ठ रसिक संत जो कि प्रकाश में भी नहीं हैं, वास करते आये हैं, कर रहे हैं, और करते भी रहेंगे।

ऐसे ब्रजनिष्ठ संतों में एक हैं परम वीतरागी निःस्पृह विरक्त संत पू. बाबा श्री रमेश जी महाराज, जो पिछले ६२ वर्षो से श्रीमानमंदिर, गह्वरवन (बरसाना) में निवास कर रहे हैं और कभी ब्रज से बाहर नहीं जाते हैं। उनकी ख्याति ब्रज में ही नहीं सारे विश्व में जिज्ञासुओं के लिए प्रेरणास्रोत बनी हुई है। लाखों भक्त वेबसाइट- WWW.MAANMANDIR.ORG से उनके दैनिक सत्संग का लाभ ले रहे हैं। पू. महाराज जी के संरक्षण में वर्तमान समय में लगभग चालीस हजार गौ वंश (गाय, बछड़े, साँड़) का पालन हो रहा है। ये प्रायः वे गायें है जिन्हें कट्टीखाने में कटने से बचाया गया हैं, ऐसा कोई दिन नहीं जाता जब १००, २०० गायें प्रतिदिन न आती हों। पू. महाराज जी ने कह रखा है कि जो भी गायें माताजी गौशाला में आवें उन्हें वापिस न भेजा जाये। सबका पोषण गोपाल जी करेंगे। गीता में भगवान् ने स्वयं कहा है-

''अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहःम्यहम्॥''
(गीता ९/२२)

माताजी गौशाला एवं श्री मान मन्दिर में अखण्ड भगवन्नाम संकीर्तन चलता है, इसी के प्रभाव से असम्भव कार्य सम्भव हो जाते हैं। यह सर्वविदित है कि पू. महाराज जी ब्रज के बाहर नहीं जाते हैं। खंडार तहसील, सवाई माधोपुर जिला, राजस्थान में एक सन्त हुए हैं श्री नित्यानंद जी महाराज, जिन्होंने निष्काम भाव से गाँव-गाँव में भगवन्नाम का प्रचार किया। वे पू. महाराज जी के विशेष प्रेमी थे। उन्होंने प्रार्थना की कि महाराज आप ब्रज से बाहर जाते नहीं हैं, आप हमें ब्रज ८४ कोस की यात्रा करा दीजिए। महाराज राजी हो गये और बोले कि यात्रा के लिए हम

तैयार हैं परन्तु एक शर्त रहेगी कि किसी यात्री से कोई शुल्क नहीं लिया जायेगा, अपनी इच्छा से कोई सेवा करता है तो स्वीकार कर लिया जायेगा, बंधन नहीं होगा कि इतनी धनराशि देनी है। सर्वसम्मति से प्रस्ताव पास हो गया। २० मई १९८८ को बरसाना से यात्रा लगभग १५० भक्तों के साथ चल पड़ी। यात्रा में २४ घंटे भगवन्नाम संकीर्तन चलता रहता था। कोई टेंट-तम्बू की व्यवस्था नहीं थी। एक ट्रैक्टर में राशन का सामान चलता था और एक दूसरे ट्रैक्टर में बिस्तर आदि अन्य सामान। गर्मियों की छुट्टी में हाईस्कूल व इन्टर कॉलेज आदि की बिल्डिंग मिल जाती थीं या कहीं पेड़ों की छाया में भी पड़ाव रहता। हर यात्रा में कोई न कोई विशेष चमत्कार अवश्य होता था।

जब दाऊजी से सबेरे यात्रा ब्रह्माण्ड घाट के लिए रवाना हुई तो रास्ते में सैनवे गाँव की एक वृद्ध महिला को उल्टी दस्त होने लगे, उसे पास के गाँव गिड़ाये में एक घर में छोड़ दिया गया कि यात्रा पड़ाव पर पहुँचने पर वाहन से उसे ले जायेंगे। गाँव वालों ने सहर्ष रख लिया। दो घंटे बाद वह महिला मर गयी। उस गाँव के पाँच-सात व्यक्ति उसे चारपाई पर डालकर यात्रा में ले गये। उस समय यात्रा यमुना पार कर चुकी थी। लोगों ने आवाज लगाई-बाबा! वो महिला मर गयी है। यात्रा रुकी। उसके निमित्त वहाँ कीर्तन किया गया। ५ मिनट बाद वह महिला जीवित हो गयी, मुख खोलने पर उसके मुख में यमुना जल डाला गया और उसकी चेतना लौट आई। डिस्पेंसरी में ले जाकर उसे बोतल चढ़ाई गई। शाम को सूचना पाकर उसके गाँव के लोग अंतिम संस्कार करने को लेने आ गये परन्तु जब उनको मालूम हुआ कि वह जीवित हो गयी तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा और खुशी-खुशी उसे अपने घर ले गये। यह चमत्कारिक घटना अखबारों में भी छपी थी। ऐसे अनेकों चमत्कार प्रति वर्ष होते थे। तब से यात्रा प्रति वर्ष होती है। शरद पूर्णिमा से दो दिन पहले त्रयोदशी से बरसाना से यात्रा प्रारम्भ होती है। यह ४० दिन की यात्रा है। अब उस यात्रा में १५, १६ हजार लोग चलते हैं। यह यात्रा सबके लिए नि:शुल्क है।

◗◗◗

'सर्वनाम' से राधाचरित्र

(श्रीबाबामहाराज द्वारा श्रीराधासुधानिधि-व्याख्या से संग्रहीत)

यस्याः कदापि वसनाञ्चलखेलनोत्थ
धन्यातिधन्यपवनेन कृतार्थमानी।
योगीन्द्रदुर्गमगतिर्मधुसूदनोऽपि।
तस्या नमोऽस्तु वृषभानुभुवो दिशेऽपि॥ (रा.सु.नि. १)

ग्रन्थकार ने अपनी बहुत दीनता दिखाते हुए ग्रन्थ के प्रारम्भिक श्लोक में न तो श्रीराधारानी को प्रणाम किया, न श्रीकृष्ण को प्रणाम किया, किसी को भी प्रणाम नहीं किया, यह एक बहुत विचित्र बात थी। ग्रंथकार का भाव है कि हम तो श्रीजी को प्रणाम करने योग्य ही नहीं है। वे वृन्दावनेश्वरी (श्रीकृष्ण की ईश्वरी) उनको हम जैसे जीव कैसे प्रणाम कर सकते हैं, इसलिए उन्होंने श्लोक में जो मंगमलय प्रणाम किया है, वह बरसाने को प्रणाम किया है। 'यस्याः' कहकर ग्रंथकार ने कुछ नाम नहीं लिया है, वह कहते हैं कि हम तो राधारानी का नाम भी नहीं ले सकते हैं, उनका नाम हम कैसे लें, स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण भी हृदय में प्रेम भर जाने के कारण जिनका पूरा नाम नहीं ले पाते हैं, उन लाड़िली जी का नाम हम कैसे लें? इसलिए ग्रंथकार ने नाम नहीं लिया और सर्वनाम से ग्रन्थ का प्रारम्भ किया। सर्वनाम से ही श्रीमद्भागवत में राधाचरित्र आया है। वस्तुतः श्रीमद्भागवत में राधा नाम नहीं है। जैसे कोई पुत्र अपने माता या पिता के पास जाता है तो उनका नाम नहीं लेता है। गुरुदेव के पास जायेंगे तो भगवन् कहेंगे, गुरुजी का नाम लेकर कोई उन्हें संबोधित नहीं करता (कोई अपने गुरु को गोपालदास गुरु कहकर नहीं पुकारेगा)। अतः नाम इसलिए भी नहीं लिया जाता है परन्तु नाम से मतलब नहीं है, काम क्या है? जैसे आप अपने पिताजी के पास जायेंगे तो कहेंगे कि पिता जी आप बैठिये, आप कहाँ गये थे। यानि जब संज्ञा नहीं होती है तो सर्वनाम का प्रयोग होता है। अतः नाम से मतलब नहीं है, संज्ञा- सर्वनाम का लक्ष्य क्या है? लक्ष्य है वह व्यक्ति। अतः जब सर्वनाम से श्रीराधिकारानी का चरित्र गाया जा रहा है तो फिर शंका करना ही गलत है कि श्रीजी यहाँ नहीं हैं। इसका मतलब वो व्यक्ति बिलकुल मूढ़ है और उसे भाषा का ज्ञान भी नहीं है। क्योंकि श्रीमद्भागवत में बार-बार लाड़िली जी का ऐसा चरित्र आया है कि ऐसा कहीं नहीं आया है।

अनयाऽऽराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद् रहः॥
(भा.१०/३०/२८)

'अनया' कहकर इंगित किया गया है, यानि यही हैं महारानी, एकमात्र इनके द्वारा ही श्रीकृष्ण की आराधना हुई है, जिनके लिए नंदनंदन ने सब गोपियों को छोड़ दिया है। गोपियाँ कहती हैं- 'इस एक के पीछे हम कोटि-कोटि गोपियों को छोड़कर श्रीकृष्ण चले गए।' यह कितनी बड़ी महिमा है, जिनके लिए श्यामसुंदर सब कुछ छोड़ देते हैं।

इस ग्रन्थ का प्रारम्भ 'यस्याः' यानि सर्वनाम से किया गया है, इस श्लोक में श्रीजी का नाम नहीं लिया गया है। वह अद्भुत परम देवी जिनका हम नाम नहीं ले सकते। 'यस्याः' का यही भाव है। यदि कोई यह प्रश्न पूछे कि बीच में तो आपने कई बार श्रीजी का नाम ले लिया तो इसका उत्तर ग्रंथकार अंत में कहते हैं कि हमने क्यों लिया?

क्वासौ राधा निगमपदवीदूरगा कुत्र चासौ।
कृष्णास्तस्याः कुचकमलयोरन्तरैकान्तवासः।
क्वाहं तुच्छः परमधमः प्राण्यहो गर्ह्यकर्मा
यत् तन् नाम स्फुरति महिमा ह्येष वृन्दावनस्य॥
(रा.सु.नि.२६०)

राधारानी की ऐसी अनंत महिमा है कि जहाँ वेद भी नहीं पहुँच सकते हैं और कृष्ण के बारे में क्या कहा जाय तो ग्रंथकार

कहते हैं – ''**कृष्णस्तस्याः कुचकमलयोरन्तरैकान्तवासः।**'' कृष्ण तो एक भौंरे थे जो श्रीराधिका रूपी कमल के भीतर सदा के लिए बंद हो गये, सृष्टि प्रपंच को छोड़कर उन्होंने एकांत वास ले लिया। ''**क्वाहं तुच्छः परमधमः प्राण्यहो गर्ह्यकर्मा**'' 'और कहाँ मैं नीच (तुच्छ) प्राणी, अधम' क्या ऐसा प्राणी राधानाम लेने के योग्य है? वह कहते हैं कि मैंने जो श्रीजी का नाम लिया उसका कारण है – ''**यत् तन् नाम स्फुरति महिमा ह्येष वृन्दावनस्य॥**'' इस ब्रज रज में आने वाला जो भी व्यक्ति है उसे यह रजरानी अधिकार दे देती हैं कि 'जा तू राधा-राधा कह' ये यहाँ की मिट्टी का प्रताप है। इस ब्रज में जो भी आता है वह सहज में ही राधे-राधे कहने लगता है। इसलिए ब्रजवासी कहते हैं कि यहाँ आकर भी जिसने राधा-राधा नहीं कहा, राधा नाम नहीं जाना, उससे ज्यादा अभागा कोई नहीं है। ब्रजवासी गाते हैं –

जो बरसाने (वृन्दावन) में आयो जानै राधा नाम न गायो।
वाके जीवन को धिक्कार रटे जा राधे-राधे॥

अतः 'यस्याः' का मतलब ये हुआ कि जिन लाड़ली जी का हम लोग नाम भी नहीं ले सकते। इसलिए ग्रन्थ का प्रारम्भ उन्होंने सर्वनाम से किया। श्लोक का शब्दार्थ यह है कि श्रीजी किसी समय खेल रही थीं। खेलते समय उनका आंचल उड़ा और उनके आँचल (साड़ी) के छोर को छूकर हवा जब राधारानी के आँचल की सुगंध को लेकर चली और श्रीकृष्ण के पास पहुँची तो हवा को पाकर श्रीकृष्ण बोलते हैं – धन्यातिधन्यहो गया मैं (धन्य नहीं, अतिधन्य भी नहीं, अतिधन्य से भी धन्य-धन्य हो गया) कृतार्थ हो गया। मैं अनंत कोटि ब्रह्माण्ड नायक स्वयं श्रीकृष्ण भी जिनके वस्त्र की हवा को पाकर धन्यातिधन्य (कृतार्थ) हो गया।

'**योगीन्द्रदुर्गमगतिर्मधुसूदनोऽपि।**' कैसे कृष्ण हैं? 'योगीन्द्र' माने महायोगीराज शिव, सनकादिक, नारदादिक ये भी जिन कृष्ण को देख नहीं पाते हैं, कृष्ण की दुर्गम गति को समझ नहीं पाते हैं। भगवान् की लीला को देखने के लिए सभी योगेश्वर ब्रज में आते हैं, कृपा माँगते हैं, कोई गोपी बनते हैं, कोई ग्वाल बनता है। ऐसे योगेश्वरों के लिए भी जो श्रीकृष्ण दुर्लभ हैं '**तस्या नमोऽस्तु वृषभानुभुवो दिशेऽपि॥**' 'तस्या' माने उन, यानि नाम फिर भी नहीं लिया। 'वृषभानु भू' कहते हैं श्री जी को। 'वृषभानु' मतलब राजा वृषभानु और 'वृषभानुभू' माने उनसे उत्पन्न होने वाली, उनकी दिशा को नमस्कार है अथवा 'वृषभानु भू' अर्थात् वृषभानु की भूमि, उसकी दिशा बरसाने को नमस्कार है। इस प्रकार श्लोक का यह शब्दार्थ है।

श्लोक में 'यस्याः' के बाद अगला शब्द है 'कदापि'– 'कदा' में भी ग्रंथकार बात को छिपा गए। राधारानी खेल रही थीं, कहाँ खेल रही थीं, कब खेल रही थीं, कैसे खेल रही थीं? ये सब कुछ नहीं बताया। तो 'कदा' माने कभी खेल रही थीं। अब इसके ऊपर कई भाव लिखे गए हैं, कितने ही टीकाकारों ने लिखा है। किसी ने लिखा है बरसाने में खेल रही थीं, किसी ने लिखा है कि वृन्दावन में खेल रही थीं, ब्रज में किसी भी स्थल में खेल सकती हैं। अपनी-अपनी भावनानुसार सबने अलग-अलग भाव (अर्थ) किये हैं और उसी हिसाब से सबने लीला का वर्णन किया है कि कैसे खेल रही हैं किशोरी जी। परन्तु मेरे मन में जो भाव आया उसे कह रहा हूँ क्योंकि जब सभी ने अपने-अपने भाव व्यक्त किये हैं तो हमको भी अपने हिसाब से सोचने का अधिकार है। जैसे 'ब्रह्मसूत्र' पर सभी आचार्यों ने अपने-अपने मत (द्वैत, अद्वैत, शुद्धाद्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि) निकाले हैं। हम भी अपने हिसाब से विचार कर रहे थे कि ऐसा खेल होना चाहिए किशोरी जी का कि सभी शब्दों से संगति बैठ जाए। यदि 'कदा' का अर्थ वृन्दावन करते हैं तो वृन्दावन वृषभानुजी की राजधानी नहीं है। वस्तुतः बरसाना-वृन्दावन में कोई अंतर नहीं है लेकिन वृन्दावन की 'वृषभानु' शब्द से भी संगति बैठनी चाहिए, अगर कोई कहे कि आप बरसाने का पक्ष ले रहे हैं तो ऐसा नहीं हैं क्योंकि श्लोक में 'वृषभानुभुवो' शब्द आया है। मान लो कोई परकीया वाला 'कदा' से जाव का अर्थ लगाता है तो वहाँ भी वृषभानुजी से संगति नहीं बैठती है। शास्त्रों में राजा वृषभानु की तीन राजधानियाँ बताई गयी हैं – बरसाना, बरहाना तथा रावल।

अतः वृषभानुजी का सम्बन्ध इन तीन स्थलों से ही है। इसलिए सर्वप्रथम तो ऐसा स्थल होना चाहिए, जहाँ बरसाना, हो, दूसरी बात ऐसा खेल (लीला) होना चाहिए जो बरसाने में हुआ हो, तीसरी बात जिस लीला में आँचल की चर्चा हुई हो और वह चर्चा प्रमाणित हो, अपने मन से सोची हुई न हो, जिसको महापुरुषों ने गाया अथवा कहा हो। (हमने कोई पद

नहीं बनाया, हम अपनी ओर से कुछ नहीं कहते हैं, ये तो रसिकों का प्रमाण है) आँचल की लीला (आँचल के पकड़ने की चर्चा) बरसाने में दो जगह होती है, एक तो गहवर वन में और दूसरी सांकरी खोर में। वृषभानु भवन में ये लीला नहीं हो सकती क्योंकि वहां ठाकुर जी बरसाने-नंदगांव के सम्बन्ध से मर्यादा में रहते हैं। नंदनंदन वृषभानु भवन में चोरी-चुपके से जा सकते हैं, वैसे नहीं जा सकते हैं एक सम्बन्ध की गरिमा के कारण से। अत: गहवरवन और सांकरीखोर में ही आँचल से सम्बंधित लीलायें मिली हैं। सांकरीखोर की लीला यह है कि श्रीजी वृषभानु-भवन से वहाँ आती हैं, सभी लोग जानते हैं कि सांकरीखोर पर दधि-दानलीला होती है, यह एक प्रसिद्ध लीला है जो आज तक चल रही है और हर साल वहाँ मटकी फूटती है। द्वापरयुग की परम्परा वहां अब तक चल रही है। किशोरी जी सांकरीखोर पर आती हैं, नन्दनंदन भी दूसरी ओर से आकर उनका आँचल पकड़ लेते हैं। इसलिए आँचल के पकड़ने से स्वाभाविक रूप से आँचल की वायु की प्राप्ति हो जाती है। रसिकों ने यहाँ की लीला का गान किया है जो इस तरह से है -

तुम नंद महर के लाल, मोहन जान दे।
रानी जसुमति प्राण अधार, मोहन जान दे॥

और ठाकुरजी कहते हैं-

नागरि दान दे!!!

आगे चलकर के श्यामसुन्दर उस सुन्दरता को देख रहे हैं कि करोड़ो-करोड़ों चन्द्रमा भी जिनके मुख के आगे न्यौछावर हैं ऐसी श्रीराधारानी आ रही हैं, मनमोहन देखते हैं किशोरीजी की छटा को और देखते-देखते साहस करके थोड़ा-सा अंचल (एक छोर) पकड़ लेते हैं तो किशोरीजी कहती हैं-

चंचल नैन निहारिए, अति चंचल मृदु बैन।

हे श्याम! तुम बड़े चंचल हो, बड़ी चंचल दृष्टि से हमें देख रहे हो।

कर नहिं चंचल कीजिए, तजि अंचल चंचल नैन॥
नागरि दान दे!!! मोहन जान दे!!!

वृषभानुनन्दिनी का अंचल पकड़ लिया है श्रीकृष्ण (नंदलाल) ने, वो मना करती हैं। श्यामसुन्दर कहते हैं- हे राधे! इस अंचल के भीतर में आपने ऐसी सुंदरता छिपा रखी है, ऐसा सुन्दर अंचल देखकर मन हमारा वश में नहीं है, इस अद्‌भुत अंचल के भीतर अद्‌भुत सौन्दर्य है।

सुंदरता सब अंग की, वसनन राखी गोय।
निरखि-निरखि छबि लाड़ली, मेरो मन आकर्षित होय॥
नागरि दान दे!!! मोहन जान दे!!!

अंचल नहीं छोड़ा। एक हाथ में लकुट है सोने की ओर एक हाथ में श्रीलाड़िलीजी का अंचल है और खड़े मुस्कुरा रहे हैं, अपने रूप का जादू डालने का प्रयत्न कर रहे हैं कि श्रीलाड़िलीजी अपने अंचल को न छुड़ावें। क्या सुन्दर मीठी लीला है!! नन्दलाल खड़े हैं और श्रीजी का भाव नकारात्मक है।

लै लकुटी ठाढ़े रहे, जान साँकरी खोर।
अरे मुसक ठगोरी लाय के, सकत लई रति जोर॥
मोहन जान दे!!! नागरि दान दे!!!

ऐसा सुन्दर अंचल है!! अनेक जगह रसिकों ने लिखा है- 'रूप शरद चन्द्र कोटि वदने' करोड़ों-करोड़ों चन्द्रमा भी एक साथ निकलें लेकिन उस राधा मुख की शीतलता, सुंदरता को नहीं पा सकते। बेला के फूलों से काले-काले बालों में ऐसा लगता है मानो रात में तारे निकल आये हैं, कबरी के ऊपर अंचल है, ऐसी सुन्दर कबरी है कि उनके श्रीअंग की सुगंध से चारों ओर वृन्दावन के दिव्य सैकड़ों भौंरे धीरे-धीरे दूर से श्रीलाड़िलीजी के अंग की और अंचल की दिव्यातिदिव्य सुगंध लेते चल रहे हैं। जहाँ साक्षात् श्रीलाड़िलीजी हैं जिनका करोड़ों लक्ष्मियों से भी बढ़कर सौन्दर्य है। सबसे बड़ी बात है- लाड़िलीजी का अंचल, जिस अंचल के भीतर उनके दिव्य अंग की सुगंध चारों ओर फैल रही है, उस दिव्य गन्ध को श्रीजी ने ढक रखा है, यही तो लालजी कह रहे हैं कि आपने अपने वसन से अपनी सुंदरता और सुगंध को ढक रखा है, हमने इसलिए अंचल पकड़ा है कि आपकी श्रीसुगंध तो हमको मिल जाय।

अब मेरी कौन तो सुनैगो राधारानी बिना।
तेरो ही ग्यान ध्यान, तेरो ही सुमिरन राधे
तोय बिन पीरा मेरी कौन तो हरैगो राधारानी बिना॥
सतयुग त्रेता द्वापर कलियुग
यमराज बिचारौ मेरो कहा तो करैगो राधारानी बिना।
कहे भगवान् हित रामराय प्रभु
भवसागर बेड़ा पार को करैगो राधारानी बिना।

◗◗◗

असङ्गता ही अनन्यता

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(गीता ८/१४)

भगवान् ने कहा कि जब तुम अनन्य बन जाओगे, उस दिन मैं सुलभ हो जाऊँगा।

जब तक हम अनन्य नहीं बनते तब तक भगवान् से दूर हैं।

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्॥

(गीता ६/४५)

लाखों-करोड़ों वर्ष लग जाते हैं अनन्य बनने में, क्योंकि हम लोगों का मन फिसलता रहता है। फिसलता कैसे है? लड्डू-कचौड़ी देखा तो फिसल गये, कोई अच्छा रूप देखा तो फिसल गये। आसक्ति में फिसल गये- ये हमारी बहू है, बेटा है। रूपया-पैसा देखा तो फिसल गये, मान-सम्मान के लिए फिसल गये। इन सबसे चित्त-वृत्तियाँ हटती रहती हैं, इसीलिए भगवान् दुर्लभ हैं। जिस समय जीव अनन्य हो जाता है, बस उस समय भगवान् सुलभ हो जाते हैं-

एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास।
एक राम घनश्याम हित चातक तुलसीदास॥

अनन्य बनने के लिए ही सत्संग किया जाता है।

बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।

(रा.उ.का. ६१)

सच्चे संत ही बतायेंगे कि आसक्ति में क्यों मरते हो? आसक्ति करने वाले का भी नुक्सान, जिससे करोगे उसका भी नुक्सान। मान लो तुम अपने स्त्री-पुत्र में आसक्ति रखते हो तो उससे पक्षपात आ जायेगा। पक्षपात से तुम्हारा भी नुक्सान है, उसका भी नुक्सान है।

जब मनुष्य असंग हो जाता है तो ''असङ्गो ह्यात्मा'' भगवान् का स्वरूप हो जाता है। जितना असंग होता है, उतना ही प्रबल बनता है और उसकी आत्म-शक्ति से थोड़ा-सा भी सम्बन्ध रखने वाले प्रबल बन जायेंगे।

यदि तुम असंग हो तो तुम्हारे संग रहने वाले सब प्रबल बन जायेंगे। ''लेकिन जब तुम ही असंग नहीं हो, तुम्हारे में ही करैन्ट (current) नहीं है तो तार जोड़ते रहो, लट्टू में कभी रोशनी नहीं आएगी।'' ये बड़ी विचित्र बात है। हम स्वयं कमजोर हैं और घर वालों (स्त्री,पुत्रादि) को भी कमजोर बनाते रहते हैं अपनी आसक्ति करके और चाहते हैं कि वो शक्तिमान (ताकतवर) बन जाएँ। हर आदमी सोचता है कि हमारा लड़का श्री सम्पन्न, धन सम्पन्न, बल सम्पन्न हो जाए परन्तु हो कैसे जायेगा? भगवान् ने कहा है-

'गुणेष्वसक्तधीरीशो'

(११/१९/४४)

ईश्वर कौन है? 'ईश' माने बली। मनुष्य स्वामी (शक्तिमान) हो सकता है । जब मनुष्य असंग हो जाता है तब स्वामी बन जाता है, बलवान बन जाता है और उसको जो एक गिलास पानी भी पिलाएगा, उसकी सेवा करेगा, वह शक्तिशाली बन जाएगा। लेकिन जब हम स्वयं दुर्बल हैं तो गृहस्थ में परिवार वाले दुर्बल रहेंगे और वैरागियों (साधुओं) के चेला-चेली होते हैं वे भी सब दुर्बल रहेंगे।

गुरूजी लड़ें मुकद्दमा, चेला जोतें खेत।
परमारथ जानें नहीं, पैसन ही सों हेत॥

गुरुजी दुर्बल हैं तो चेला जी कहाँ से पहलवान हो जायेंगे। महात्मा सुन्दर दास जी (जो कबीर दास की तरह थे) ने लिखा है- ''गुरु मेहरबान तो चेला पहलवान''

गुरु अगर मेहरबान (दयालु) है तो चेला पहलवान बन जायेगा। (पहलवान माने दंड-बैठक करना नहीं है) 'पहलवान' माने विरक्त हो जायेगा, इस जड़ शरीर में आसक्ति नहीं करेगा। कबीर दास जी कहते हैं-

कहें कबीर सुनो भाई साधो, ये क्या लड़ेंगे रण में।
टेढ़ी-मेढ़ी पाग संवारी, तेल चुचै जुलफन में॥

इस शरीर को सजाने वाले लोग दुर्बल होते हैं, ये बलवान नहीं बन सकते। जब गुरु जी महाराज ही श्रृंगार करते हैं, देहासक्त हैं तो चेला भी बढ़िया रेशमी कपड़ा पहनेगा और बढ़िया गद्दे पर बैठेगा। उसका शरीर और मन दुर्बल रहेगा और आसक्ति करेगा मल-मूत्र की पिंडियों (शरीरों) में। तुम्हारी आसक्ति यदि कहीं पर भी है तो तुमको दुर्बल बनाएगी, तुम प्रबल नहीं बन सकते हो। अपने मन में तुम गलतफहमी रखते रहोगे कि हम बड़े प्रबल हैं। आसक्ति सदा मनुष्य को दुर्बल बनाती है। यदि घर का मुखिया असंग है तो सारा परिवार असंग होगा, विरक्त होगा, महात्मा बनेगा, भक्त बनेगा और जब परिवार का मुखिया ही असंग नहीं है तो सारा घर दुर्बल बन जायेगा। इसी तरह से परमार्थ में अगर गुरु असंग है तो शिष्य भी प्रचंड, प्रबल एवं दुर्धर्ष बन जायेंगे किन्तु यदि गुरुजी स्वयं आसक्त हैं तो वहां का समाज दुर्बल हो जायेगा। इसीलिए भगवान् ने कहा कि जब तुम दुनिया से असंग हो जाओगे या मेरे अनन्य हो जाओगे (बात एक ही है- दुनिया से मन हटना और भगवान् में लग जाना) तो मैं तुम्हारे लिए सुलभ हो जाऊँगा।

ऐसे भक्त के लिए भगवान् सुलभ हैं, भगवान की विभूतियाँ सुलभ हैं तथा भगवान् की सारी शक्तियाँ सुलभ हैं और जो आसक्ति से दुर्बल बनता है तो उसके लिए हर वस्तु दुर्लभ है।

मान मंदिर की गतिविधियाँ

राधाष्टमी उत्सव २०१७

(मान मंदिर द्वारा विशेष आयोजन)

बरसाने की राधाष्टमी के अंतर्गत साँकरी खोर की मटकी लीला का विशेष महत्त्व है। अस्सी वर्ष पूर्व मटकी लीला के इस महोत्सव के दर्शनार्थ सम्पूर्ण मथुरा जिले का अवकाश हुआ करता था और जिले के समस्त ब्रजवासियों का अपार समुदाय उमड़ पड़ता था किन्तु बीच में साम्प्रदायिक मतभेदों के कारण सम्पूर्ण मथुरा जिले के ब्रजवासियों का आगमन बाधित हो गया। वर्तमान काल में बरसाने के निकटवर्ती ग्रामों के थोड़े ही ब्रजवासी आ पाते हैं। मतभेद का कारण भी बहुत छोटा ही था। मटकी लीला के आयोजन में रासमण्डली के लीलास्वरूप में श्यामसुन्दर का मुकुट बायीं ओर हो कि दाहिनी ओर हो, इसी बात को लेकर ऐसा साम्प्रदायिक वैमनस्य बढ़ा कि कोर्ट में मुकदमा पेश हुआ। उस जमाने के अंग्रेज जज ने खीजकर फैसला दिया कि मुकुट न दाहिनी ओर करो न बायीं ओर बल्कि सीधा रखो। इस फैसले से कृष्णानन्दी वैष्णव चिढ़ गये क्योंकि सीधा मुकुट तो भगवान् राम का ही होता है। जज के फैसले के बाद भी निम्बार्क संप्रदायी एक साधु कुएँ में कूद पड़े और अपने हठ पर अड़े रहे कि मुकुट तो बायीं ओर ही रहेगा। आत्महत्या की हद तक जाने पर अंग्रेज जज ने कहा कि ठीक है मुकुट बायीं ओर रखो लेकिन वल्लभकुल के वैष्णवों को आदेश दिया कि आप लोग अपनी ब्रज यात्रा अलग निकालो। इसके पूर्व इसी मटकी लीला को सभी संप्रदायानुवर्ती जन मिलकर एक साथ मनाते थे और वल्लभकुल की विशाल ब्रजयात्रा का भी बरसाना आगमन होता था जिसमें बीस से तीस हजार यात्री तक सम्मिलित होते थे। परन्तु कोर्ट के फैसले के बाद वल्लभकुल की यात्रा का इस विशेष उत्सव पर आगमन स्थगित हो गया और इसके साथ ही ब्रजवासियों का जो अपार जनसमूह यहाँ एकत्रित होता था, वह भी बहुत कम हो गया। राधाष्टमी से जुड़ी इस मटकी लीला का वर्णन ब्रजविभूति भवदीय श्रीनारायण भट्ट जी ने अपने ग्रन्थ ''ब्रजोत्सव चन्द्रिका'' में ''वार्द्धकी लीला'' के नाम से किया है। ब्रजवासियों के द्वारा आगे चलकर इसका हिंदी अपभ्रंश ''बूढ़ी लीला'' के नाम से हुआ। साढ़े चार सौ वर्ष पूर्व से आयोजित होने वाले इस विशाल राधाष्टमी महोत्सव को कलियुगी वैमनस्य का शिकार होते देख पूज्य श्री बाबा महाराज ने इसे पुनः अपने अतीत कालीन गौरव के साथ आयोजित किये जाने के उद्देश्य से एक विशेष भागवत सप्ताह यज्ञ का आयोजन किया है जिससे कि इसमें सम्मिलित होने वाले श्रद्धालु भक्त जन राधाष्टमी की इस विशेष लीला और अन्य स्थलियों पर होने वाले लीला उत्सवों पर अधिक से अधिक संख्या से जुड़ें। इस कार्यक्रम की रूपरेखा का अग्रलिखित चार्ट में पूरा विवरण दिया गया है।

बरसाना दर्शन व गौ-भागवत यज्ञ

दिनांक : २८ अगस्त से ६ सितम्बर २०१७ तक

स्थान : श्री माताजी गौशाला, गह्वरवन, बरसाना

व्यासाचार्या- मान मंदिर बरसाना वासिनी

बालसाध्वी मुरलिका जी

२८ अगस्त २०१७- नाटिका; २९ अगस्त २०१७- राधाष्टमी

३० अगस्त २०१७ से ५ सितम्बर २०१७ तक श्रीमद्भागवत एवं गौ-कथा यज्ञ एवं राधाष्टमी से लेकर अगले ८ दिनों तक होने वाली परम्परागत दिव्य लीलाओं के व विभिन्न दिव्य लीला स्थलों के दर्शन।

१) ३० अगस्त २०१७- मोर कुटी, जहाँ युगल सरकार ने मयूर नृत्य किया था, वहीं लड्डू लीला दर्शन।

२) ३१ अगस्त २०१७- विलासगढ़ व झूलन लीला दर्शन।

३) ०१ सितम्बर २०१७- सांकरी खोर दर्शन, दान एवं चोटी लीला एवं संध्या को प्रेम सरोवर गाजीपुर में नौका विहार लीला तथा रात्रि में मानगढ़ पर मान लीला दर्शन।

४) ०२ सितम्बर २०१७- ऊँचा गाँव ललिता अटा पर ललिता विवाह उत्सव, संध्या को प्रियाकुण्ड जहाँ राधा रानी ने विवाह के पीले हाथ धोये थे, वहाँ नौकाविहार लीला दर्शन।

५) ०३ सितम्बर २०१७- दधि दान लीला दर्शन सांकरी खोर।

६) ०४ सितम्बर २०१७- नागाजी की कदम खंडी की लीला दर्शन।

७) ०५ सितम्बर २०१७- महारास दर्शन करहला।

८) ०६ सितम्बर २०१७- यज्ञ पूर्णाहुति।

श्री राधा मान बिहारी लाल जी की ओर से आवास एवं भोजन व्यवस्था निःशुल्क रहेगी। विदेशी आगंतुक जनों के लिए दिल्ली हवाई अड्डे से बरसाना तक के लिए निःशुल्क वाहन सेवा होगी।

श्री राधा रानी निःशुल्क वार्षिक व्रज ८४ कोस परिक्रमा (१ अक्टूबर २०१७ से) में भी आपका स्वागत है, जिसमें सम्पूर्ण व्रज की अधिकांश लीला स्थलियों का दर्शन सहज में हो जाता है।

भजन गयिका : साध्वी श्रीजी शर्मा एवं गौरी देवी जी

पाण्डित्य : श्री राधिकेश शास्त्री जी

आयोजक : श्री मान मंदिर सेवा संस्थान

गह्वर वन, बरसाना, मथुरा-२८१४०५, उत्तर प्रदेश, भारत

संपर्क सूत्र : ९९२७३३८६६६, ९८३७०१४०६०२, ९९२७१९४०००

www.maanmandir.org

E-mail: info@maanmandir.org

हरिनाम प्रचार से बढ़ता सौहार्द्

श्रीराधाकान्त शास्त्री

देवहूति जी ने कपिल भगवान् से कहा है–

यन्नामधेयश्रवणानुकीर्तनाद् यत्प्रह्वणाद्यत्स्मरणादपि क्वचित्।
श्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते कुतः पुनस्ते भगवन्नु दर्शनात्॥

(भा. ३/३३/६)

अर्थ– हे प्रभो! आपके नामों (गोविन्द, गोपाल, मधुसूदन, कृष्ण, राम.....आदि) को सुनने से, कीर्तन करने से अथवा वन्दना या स्मरण करने से ही कुत्ते के माँस खाने वाला चाण्डाल भी सोमयाजी ब्राह्मण के समान पूजनीय हो जाता है; फिर जो आपका दर्शन करके कृतकृत्य हो जाय– इसमें तो आश्चर्य हो क्या है।

अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान् यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम्।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते॥

(भा. ३/३३/७)

अर्थ– *अरे! वह चाण्डाल भी सर्वश्रेठ है, जो जिह्वा से हर समय भगवान् का नाम लेता रहता है; जो भी श्रेष्ठ पुरुष भगवान् का नाम लेते हैं, उन्होंने तप, हवन, तीर्थस्नान, सदाचार का पालन, वेदाध्ययन आदि सब कुछ कर लिया।*

श्री मान मंदिर सेवा संस्थान, गह्वर वन, बरसाना का विशिष्ट कार्यक्रम गाँव–गाँव में भगवन्नाम प्रचार–प्रसार व उसके माध्यम से जनजागृतिकर लोगों में पारस्परिक सौहार्द् की स्थापना करना है। जहाँ आज एक ओर आधुनिकता की आंधी में जनमानस बहता नजर आ रहा है और अपनी मूल भावनाओं, परम्पराओं तथा सांस्कृतिक विरासत से दूर भाग रहा है, वहीं समस्त विकृतियों को दूर कर जीवन की वास्तविकता की ओर ले जाने में मान मंदिर के विरक्त संत पूज्य श्री रमेश बाबा जी महाराज, जिनकी महती अनुकम्पा से, प्रत्येक प्राणी जिसका जन्म जिस उद्देश्य के लिए हुआ है, उसे प्राप्त हो सके, एतदर्थ संस्थान के बालक–बालिकाओं को गाँव–गाँव में भेजा जाता है, वे वहाँ के नर–नारियों को एकत्र कर उन्हें न केवल भगवन्नाम की पतितपावनी धारा में अभिषिक्त कराते हैं अपितु भगवत्प्रेम के सन्देश से जन–जन में प्यार–प्रीति की भावनाओं की प्रेरणा देते हैं। गत माह में न केवल ब्रज वसुंधरा में अपितु बृहद ब्रज के अंतर्गत आने वाले अलवर, भरतपुर, आगरा जनपद के अनेक गांवों में जा–जाकर सम्मलेन कर बड़ा ही अद्भुत और अनुकरणीय कार्य किया। अलवर जनपद के दांतबाड़ा, पीपलखेड़ा व आगरा के मई गाँव में प्रचार–प्रसार से कई लाभ हुए। ग्रामवासियों ने नशा मुक्ति का संकल्प लिया और गौ पालन के लिए भी स्वीकृति प्रदान किया। जहाँ निष्कामता और निरभिमानता होती है, वहीं अनुकरणीयता आती है। चूँकि मान मंदिर सेवा संस्थान के बच्चे जहाँ भी जाते है वहाँ किसी भी प्रकार की भेंट स्वीकार नहीं करते हैं। भिक्षा के रूप में दक्षिणा मांगते हैं तो केवल हरिनाम की व दुर्गुणों के परित्याग की। साथ ही 'संगच्छध्वम्' की भावना से उन्हें अवगत कराते हैं। इस तरह भगवन्नाम के साथ–साथ पारस्परिक सौहार्द् की वृद्धि गांवों में हो रही है।

ब्रजबालिका साध्वी मुरलिका जी की लोकपावनी श्रीमद्भागवत् कथाओं का अग्रिम कार्यक्रम

१. दिल्ली– २२/०१/१७ से २८/०१/१७ तक पता– रोहिणी सेक्टर,१३
२. बीना (मध्यप्रदेश)– ०२/०२/१७ से ०८/०२/१७ तक
३. खण्डार, जिला सवाई माधोपुर (राजस्थान)– १८/०२/१७ से २५/०२/१७ तक
४. लुधियाना (पंजाब)– १९/०३/१७ से २७/०३/१७ तक
५. नगला जै सिंह, खण्डार (सवाई माधोपुर)– ०२/०४/१७ से ०९/०४/१७ तक
६. हरिद्वार– २७/०४/१७ से प्रारम्भ
७. ०७ मई से २० अगस्त तक लन्दन एवं संयुक्तराष्ट्र अमेरिका के विभिन्न स्थलों पर कथा का आयोजन है।